श्री सयाजी साहित्यमाला--पुष्प ८६

(विज्ञान गुच्छ)

अवतार रहस्य

अनुवादक

शान्तिप्रिय आत्मारामजी

दी आर्यधर्म, गुजराती हिंदीशिक्षक इत्यादि के लेखक
तथा कोषकी कथा, चीनकी संस्कृति, निरोगी शरीर
इत्यादि के अनुवादक.

प्रकाशक

जयदेव ब्रदर्स बडोदा

स. १९२२) (प्रथम संस्करण
संवत् १९७९) मूल्य (प्रति ५००

सजिल्द ॥।=) बिनाजिल्द ॥।)

प्रकाशक
ए. ए. दुदानी बी. ए. एल. एल. बी.
व्यवस्थापक
जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा

श्री

विज्ञप्ति

अपने देशी भाषा के साहित्यकी अभिवृद्धि करने के सदुद्देश्य
[illegible]मंत मह‍ाराजा साहेब सर सयाजीराव गायकवाड
[illegible]ावन, सेनाखासखेल शमशेर बहादुर, जी. सी. एस. आई,
सी. आई. ई ने कृपाकर दो लाख रुपये की जो रकम सुर-
रखी है उसके व्याजमें से श्री सयाजी साहित्यमाळा
अनेक विषयों के पुस्तक तयार किए जाते है ।

यह "अवतार रहस्य" नामक पुस्तक श्री. ज. पु. जोषीपुरा
युरोपीय तथा भारतीय पुराण कथाओनी तुलनात्मक समीक्षा
[illegible] गुजराती पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है और उक्त ग्रन्थ
के पुष्प ८६ के रूपमें श्री शान्तिप्रिय आत्मारामजी द्वारा तय्यार
[illegible] कर विद्याधिकारी की भाषांतर शाखा द्वारा संशोधन
[illegible]र प्रसिद्ध करते हैं ।

[illegible]ाधिकारी कचेरी
[illegible]ाषांतर शाखा.
बड़ोदा
[illegible] १५-७-२२

भा. नि. महेता. नं. के [illegible]
भा. म. वि[illegible]ाधिकारी.

अवतार रहस्य

विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ
	हिन्दी अनुवादक की भूमिका	१
	मूल लेखक की प्रस्तावना	१३
	भाषाशास्त्रकी उत्पत्ति	१
	आर्यकुल और उसका आदि निवासस्थान ...	२
	कूट प्रश्न और उसका समाधान....	६
	युग लक्षण तथा तज्जनित अनुमान	९
	हिन्दु तथा पारासियों के पूर्वजों का सपिण्डत्व....	२३
	वस्तु विभाग	२८
	युरोपकी पूर्वकालीन तथा वेदकालीन कथायें....	३१
१	विश्वोत्पत्ति	३४
२	द्यौष्पितर	३८
३	वरुण	४०
४	इन्द्र	४३
५	अग्नि	४४
६	सूर्य	४६
७	सोम	४८
८	उषस्	४९
९	यम	५०
१०	वायु	५१
११	अश्विनौ	५१
१२	हिन्दुओंके पुराण	५२
१३	पुराणोक्त विश्वोत्पत्ति	५२

१४ देवताओंकी उत्पत्ति ५७
१५ ब्रह्मा ६१
१६ वरुण ६३
१७ इन्द्र ६६
१८ अग्नि ६८
१९ सूर्य ७२
१९ अ. विष्णु ७४
(१) § मत्स्य ७६
(२) § कूर्म ७६
(३) § वराह ७७
(४) § नरसिंह ७७
(५) § वामन ७६
(६) § परशुराम ७८
(७) § राम ८१
रामायण तथा इलियड.... .... ८४
(८) § कृष्ण ८५
(९) § बुद्ध ९६
(१०) § कल्कि ९७
२० चन्द्र १००
२१ उषा १०३
२२ यम १०४
२३ वायु ११०
२४ अश्विनौ ११३
२५ प्रकीर्ण ११४
उपसंहार ११६

ओ३म्

हिंदी अनुवादक की भूमिका

भारतीय तथा यूरोपीय पुराण कथाओं की तुलनात्मक समीक्षा नामक गुजराती ग्रन्थ, श्रीयुत पण्डित जयसुखराय वि. पुरुषोत्तमराय जोषीपुरा एम. ए. ट्रान्स्लेटर विद्याधिकारी कचहरी बड़ोदा राज्यके शिक्षण विभाग की तरफ से. ता. १–३–१९१६ इ. को गुजराती भाषा में प्रकाशित हुवा था। जो मनुष्य अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे उनको इस उत्तम ग्रन्थ से बड़ा लाभ हुआ और हिन्दी भाषा भाषियों के लाभार्थ उसका अनुवाद उक्त शिक्षण विभागने उचित समझ कर करवाया है इसके संबंध में हमारा निम्न वक्तव्य है।

भारत भूषण रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने एक लेख में वर्णन किया है कि भारत निवासी अपने पुराने विचारोंको लिए हुए रहना चाहते थे, पर युरोप की संस्कृति की भयंकर टक्करने उनको युरोप के नवीन पुरुषार्थ मय युग से उदासीन रहने न दिया और अब उनको विवश जागना पड़ा। ठीक इसी प्रकार जब कि युरोप की संस्कृति की टक्कर ने हमारी निद्रा को भंग कर दिया है तब हम आंख बन्द और कान मूंद कर जीवन व्यतीत करना चाहें तो कर नहीं सकते। हम चाहे कि अब हम मेक्समूलर, श्रेडर, बोप, मोनियर विलियम्स आदि यूरोपके पण्डितों के स्वतंत्र विचार जो उन्होंने हमारी संस्कृत पुस्तकों के विषय में दर्शाये हैं वे अपने दिमाग में न घुसनें दें तो यह नितान्त असंभव है। आवश्यकता यह है कि इन विचारो को विचार पूर्वक जानें और फिर अपने घरकी पड़ताल करते हुए प्राचीन आर्य्य संस्कृति और संस्कृत साहित्यका मुख उज्जवल करें। श्रीयुत लोकमान्य बालगंगाधर तिलक पर इन विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा था और उन्होंने उसी प्रकार के विचार अपने वेदोंमें ध्रुवीय ग्रह नामी अंग्रेजी पुस्तक में स्वतंत्रतासे लिखे

हैं। ऋग्वेद के एक मंत्रका महत्व जो उषा के स्वरूप का बोधक है उन्हों ने अनुभव किया वह तो यथार्थ ही था, पर इससे तात्पर्य्य जो उन्हों ने निकालां उस से हम तथा सहस्रों पण्डित सहमत नहीं हो सकते, कारण कि यदि वेदमें उत्तरीय ध्रुव की उषा का पूरा वर्णन है तो इससे यह भाव सिद्धकरना कि आदि कालमें वैदिक आर्य्यों का आदि निवास स्थान उत्तरीय ध्रुव ही होना चाहिये ठीक नहीं हो सकता, कारण कि वेदमें हिमवान् पर्वतों और उग्रगामिनी नदियों तथा सागर में नौका संचालन, आकाशमें विमान गमन का भी पूर्ण वर्णन मिलता है। इससे यह कोई नहीं कह सकता कि आदिस्थान उन लोगों का कहांथा दूसरी त्रुटि लोकमान्य के लेख में यह दीख पड़ती है कि वे अपौरुषेय वेदों को युरोप के पण्डितों के समान आर्य संस्कृति का एक इतिहास मान रहे हैं। भारत वर्ष के समग्र पंडित एक मतसे वेद को अपौरुषेय परम प्रमाण और परमशास्त्र मानते हैं न कि इतिहास। वेद काल के ऋषि यास्काचार्य निरुक्त में इस बात को सिद्ध कर चुके हैं कि वेद के शब्द यौगिक और अर्थ तर्क ऋषि के अनुकूल हैं। इस के विरुद्ध लोकमान्य तिलक का साहस पंडितों की दृष्टि में मान्य नहीं हो सकता। आयुर्वेद में वर्णन है कि जब ऋषियों की सभा हुई तब उन्होंने भारद्वाज ऋषि को परमवैद्य इंद्र के पास स्वर्ग में विद्या सीखने के लिये भेजा, यह स्वर्ग हिमालय वा तिब्बत का कोई प्रदेश था यह निर्विवाद है। कारण कि सोमलता औषधि तिब्बत हिमालय आदि प्रदेश में ही मिलती है। सोम औषधि के विचार को लेकर दक्षिण के एक और पंडितने लोकमान्य के उक्त ग्रन्थ के विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा है जिस में उसने दर्शाया है कि आदि वैदिक आर्य्यों का प्रदेश वही होना चाहिये जहां सोमलता मिलती है। हम इस ग्रन्थ कर्त्ता के भी पूर्ण मत के नहीं हैं कारण कि हमारा कोई नवीन विचार वा कल्पना नहीं है। इस ग्रन्थ-कर्त्ता ने भी वेदों में यौगिक शब्दों का होना नहीं माना यह उस की भारी त्रुटि है। वास्तव में वेद रूपी विद्या कोषगृह को हमें उन चाबियों

से खोलना चाहिए जोकि पुराने ऋषि दे गये हैं। वेद के शब्द यौगिक और अर्थ तर्क पूर्वक मान लेने से यदि कोई पश्चिमी संस्कृत का विद्वान् इन को अपौरुषेय शास्त्र कहने को न भी तैयार हो तो भी यह उन को विश्वविद्याकोष वा सर्व विद्या भण्डार माने बिना नहीं रह सकता, फिर वैदिक शब्द इस चाबी के लगाते ही कुछ नए रूप में नजर आएंगे। जो देवता इस समय पौराणिक कथाओं के रूपमें थे उन को **तुलनात्मक समीक्षा** की चावी लगाने से विद्वान् ग्रन्थकर्त्ता श्री जोशीपुरा ने विष्णु के पौराणिक दश अवतारों को सूर्य के दश अवतार का जो रूपक दिया है वह यथार्थ है और इसी प्रकार न केवल भारतवर्ष की पुराण कथाओं के यथार्थ रूपके दर्शन वेदों में हो सकेंगे किन्तु भूगोल की पुराण कथायें भी अपने आदि उत्तम उज्ज्वल रूप में दृष्ट हो सकेंगी।

अमरकोष में त्रिविष्टप (तिब्बत) प्रदेश को स्वर्ग वा देव भूमि लिखा है। आयुर्वेद में जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि हिमालय का समग्र प्रदेश तिब्बत आदि सहित जिस में सोमलता मिलती है वह आर्य्यों का नहीं मनुष्य जाति का आदि गृह था। शतपथ ब्राह्मण जैसे पुरातन ग्रंथ में मनुष्य सृष्टि हिमालय प्रदेश में हुई थी यह वर्णन मिलता है। इन शास्त्रीय प्रमाणों की पुष्टि आज सायन्स के नामी पंडित करने लगे है। जर्मनी के प्रसिद्ध प्रोफेसर ओकन साहेब ने लिखा है कि "यदि हिमालय पर्वत सब से ऊंचा पहाड़ है तो आदि मनुष्य सृष्टि निःसन्देह उसी प्रदेश में हुई" इसी की पुष्टि में अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर तथा योगी एन्ड्रोजेक्सन डेविस ने लिखा है कि जो पहाड़ इस समय सब से ऊंचा है वह स्थल सब से पहिले पृथिवी का रूप धारण कर के समुद्र के बाहर निकला था, व आदि मनुष्य निःसन्देह उसी प्रदेश में जिस को आज हिमालय कहते हैं उत्पन्न हुए थे।

मैक्समूलर ने सायन्स आफ लैंग्वेज नामक पुस्तक में लिखा है कि एक समय ऐसा था कि सर्व पृथिवी के लोगों की एक भाषा थी। हम

बल पूर्वक कह सकते हैं कि वह आदि भाषा संस्कृत ही थी, कारण कि स्काट लैण्ड के उत्तर में जो द्वीप है उसको आज शेटलैंड कहते हैं। मेक्समूलर कहते हैं कि लैण्ड शब्द, खण्डका अपभ्रंश है अब विचार कर देखें तो विदित होगा कि 'शेटलैण्ड' शीत खण्ड का अपभ्रंश है कारण कि वहां बहुत शीत पड़ता है। उत्तरीय ध्रुव के निकटवर्ती प्रदेश में एक स्थल का नाम 'नवाजेम आला' है। भूगोल के सब विद्यार्थी इसको रात दिन याद करते रहते हैं पर वास्तव में यह शब्द नव यमालय का अपभ्रंश है। रशिया का नाम संस्कृत में ऋष्य देश था इस देश की आदि प्रजा, सर्व भूगोल शास्त्री जानते हैं कि 'सम्वेडी' थी जो वास्तव में सामवेदी है। इग्लैण्ड के आदि गुरु 'द्रुइद' थे जो निः-संदेह द्विविद या द्विवेदी ब्राह्मण थे। वे पुराने ब्राह्मणों समान आवागमन आदि वैदिक सिद्धान्तों के मानने वाले थे। पवित्र खण्ड स्विटजरलैण्ड का नाम था। अफ्रीका में आजतक चन्द्र गिरि उन पहाड़ोंका नाम है जिनका अनुवाद अंग्रेजी पादरियों ने 'मून माउन्टेन' किया है। ग्रीस देश का नाम संस्कृत में गिरीश, स्पार्टा स्पर्द्धा, ईरान का आर्य्य स्थान, अस्फहान का अश्वस्थान अरेबिया का अर्ब देश (घोड़े का देश) और अमेरिका के यूरागोई पारागोई आदि देश जिनमें गायें बहुत रहती हैं उनका नाम संस्कृत में उरुगाय, परगाय हैं और सर्वत्र अमेरिका में कोलंबस से पूर्व मुर्दे जलाने तथा अग्नि होत्र करने की प्रथा थी। वेदों का 'ओ३म्' बाइबलमें 'IAM' (आइ ए एम) और कुरान में 'अलम' है जिससे मनुष्य जाति की एक उपासना सिद्ध होती है।

हम कह सकते हैं कि इस समय यूरोप में जो कतिपय वैज्ञानिक नृवंश विद्या के अभिमानी ऐसा मत रखते हैं कि मनुष्य जाति का एक वंशनहीं वह इस बात को किसी प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं कर सकते कारण कि गोरे काले पीले लाल चार प्रकार के कल्पित वंशों में भीआ-जकल विवाह होकर सन्तति पैदा होती है जिससे वैदिक ऋषियों का सिद्धान्त कि 'समान प्रसवात्मिका जातिः' जिसका भाव यह है कि

जो मिल कर समान सन्तति पैदा का सकते हैं उनकी एक जाति होती है सिद्ध हो रहा है।

आज कल किसी मनुष्य से जब हम परिचित हुआ करते हैं तो उस समय निम्न लिखित प्रश्न पूछने में आते हैं १ नाम २ जाति ३ ज्ञाति (वर्ण) ४ धर्म्म ५ धर्म्मग्रन्थ ६ मंत्र (कलमा) or creed यही प्रश्न प्राचीन काल में सर्वदेशीय आदि आर्य्यों से यदि पूछता होग.तो उसका वह उत्तर क्या देते होंगे उसका अनुमान करना इस समीक्षा युग में समीक्षकों (Research scholars) के लिये कुछ कठिन नहीं रहा। निम्न लिखित उत्तरों से उनकी उन्नत दशा का विचार ध्यान में लासकेंगे।

१ नाम (संस्कृत वा संस्कृत जन्य शब्द में होता था) **२ जाति** ['समान प्रसवात्मिका जातिः' दर्शन शास्त्र के इस मन्तव्यानुसार तथा जाति शब्द के मूल अर्थ वा व्युत्पात्ति अनुसार] जिनका योनि संबंध वा परस्पर विवाह हो सकता है वह एक मात्र भूलोक व्यापक सर्व देशीय मनुष्य जाति थी। अतः पुराने आर्य्य **जन्मजाति** अपनी मनुष्य मानते थे और कर्म्म से इस एक मनुष्य जाति के **उत्तम मध्यम** तथा **अधम** तीन भेद माने जाते थे। इन तीन भेदों का नाम दर्शन शास्त्र में **ऋषि, आर्य्य, म्लेच्छ,** कहा है।

परम सदाचारी, परम तपस्वी, परम योगी, परम विद्वान्, परम मेधावी [Original thinkers, Discoverers, Revealers, Sages and Seers] मनुष्यों का चाहे वह किसी देश में रहने वाले हों **ऋषि** शब्द बोधन कराता था। दूसरे उन्नत मनुष्य वा प्रगतिशील महाशय महानुभाव तथा सदाचारी मनुष्यों का **आर्य्य** शब्द बोधक था। **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** तथा शूद्र इस के चार उत्तम भेद विशेष गुण कर्म तथा आचार व्यवहार (स्वभाव वा शील) के कारण होते थे।

जन्म से मनुष्य जाति थी पर कर्म्म से आर्य्य तथा ब्राह्मण आदि। संस्कृत शब्द ही शब्दकोष (Dictionary) का काम देते हैं।

आज संस्कृत भाषा के अप्रचार के कारण ही लोग समझ रहे हैं कि ब्राह्मण आदि वर्ण जन्म से होते हैं। संस्कृत में वर्ण के अर्थ ही Vocation वा धंदे के हैं। वृ धातु स्वीकार करने के अर्थ में है जिस पर से यह शब्द बनता है। काशी के महान् पंडित श्रीयुत भगवान दासजीने अपने लेखों में यही बात सिद्ध की है कि वर्ण का अर्थ धंदा वा Vocation है। संस्कृत के सब पंडित जानते हैं कि ब्राह्मण शब्द के अर्थ उस मनुष्य के हैं जो **ब्रह्म** अर्थात् वेद और ईश्वर का ज्ञान रखता हो। इस लिये यदि मैक्समूलर वेदों का पंडित तथा आस्तिक है तो वह ब्राह्मण संज्ञा का निस्संदेह अधिकारी है। न्यूटन एडिसन आदि महाविद्वान् जो वेद (ज्ञान) की प्राप्ति में निमग्न रहे तथा आस्तिक थे वा हैं वह भी ब्राह्मण हैं।

क्षत्रिय शब्द भी उस शूरवीर पुरुष का बोधक है जो क्षात (चोट, आक्रमण or invasion) से प्रजा की रक्षा कर सके। लार्ड किचनर आदि सब ही देशों के महावीर तथा राजे महाराजे **क्षत्रिय** नाम के अधिकारी हैं इस में कुछ संदेह नहीं करना चाहिए।

वैश्य शब्द विश प्रवेषने धातु से बना है। जो देश देशांतरों में गमन करता हुवा धन धान्य की वृद्धि करता है वही वैश्य है। राली ब्रदर्स और टाटा ब्रदर्स सब ही वैश्य संज्ञा के अधिकारी हैं।

जो भक्ति से सेवा करे, उस का नाम **शूद्र** है आज कल जितने भी स्वयंसेविका वा सेवक युद्ध आदि में पीडित मनुष्यों की सेवा करते हैं वह तपस्वी शूद्र हैं। यजुर्वेद में शूद्र के लिए तप शब्द का प्रयोग किया है तथा " **तपसा शूद्रं** " अर्थात् तपस्वी कामों के लिए शूद्र है। वेद की दृष्टि से हम आजकल सर्व प्रकार के स्वयंसेविकाओं तथा स्वयंसेवकों को ' तपस्वी शूद्र ' कह सकते हैं। संस्कृत भाषा को न जानने वाले शूद्र के साथ तप का शब्द देख कर घबरा उठेंगे। वह उन को धैर्य्य रख कर वेद को देखना चाहिए और तदनुसार व्यवहार कर ६ कोटी शूद्रों वा अंत्यजों को समाज बन्धु समझ उन को गले

लगा कर अपने समान चतुर्थ प्रकार का तपस्वी आर्य्य समझना चाहिये। **श्रीमंत महाराजा गायकवाड बड़ौदा नेरशने** जो शूद्रों वा अत्यंजों के उद्धार वा सुधार का प्रथम स्तुत्य कार्य्य किया है उन के समान सर्व आर्य्यों को करना अपना धर्म (कर्तव्य) समझना चाहिए। (३) आजकल वर्ण की जगह ज्ञाति शब्द का व्यवहार भारतीय आर्य्य मंडल में है। भूल से लोग इस ज्ञाति शब्द को जाति समझते है। संस्कृत दृष्टि से वास्तव में जाति जन्म वाचक होने से केवल एक मनुष्य जाति का बोधन कराती है पर ज्ञाति शब्द का अर्थ मित्र मंडली है। मनु आदि धर्म शास्त्रों में ज्ञाति तथा बन्धु शब्द जो प्रयुक्त हुए हैं वह मित्र और बन्धु के ही बोधक हैं। इस ज्ञाति शब्द का अपभ्रंश इस समय न्याति व्यवहार में भारतीय मंडल ला रहा है पर खेद का विषय है कि वह इसका अर्थ जो '**मित्र मंडली**' था वह सर्वथा ही भूल गया। इस समय किसी भी आर्य्य को पूछो कि तुम्हारी जाति कौनसी है तो वह इस के उत्तर में बाणिया, ब्राह्मण आदि शब्द प्रयोग करेगा। यह सामाजिक (social) अधः पतन तब आर्य्यों से दूर हो सकता है जब प्रत्येक आर्य्य, वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना अपना परम धर्म्म (कर्तव्य) समझ ले। वेदों के अर्थ लौकिक संस्कृत के व्याकरण वा कोषों से कभी समझ में आही नहीं सकते। इस लिये पुरानें ऋषियों ने कहा है जैसा कि सब पंडित मानते और जानते है कि वेद को पढ़ने के लिए १ शिक्षा (व्याकरण मीमांसा) २ कल्प (मानवधर्मशास्त्र तथा गृह्य सूत्र) ३ व्याकरण (अष्टाध्याही, महाभाष्य, निघंटु) ४ निरुक्त (निघंटु भाष्य) ५ छन्द ६ ज्योतिष यह छ अंग तथा षट् दर्शन रूपी छ उपांग आवश्यक हैं। इस लिए यदि आज देश में एक भी अंग **निरुक्त** का प्रचार होता तो घर घर में आर्य्य लोग जान लेते कि वेद के शब्द यौगिक (अर्थ सूचक) और उसके अर्थ तर्क पोषक वा ज्ञान वर्धक हैं। यूरोप के विद्वानों के अभी निरुक्त रूपी चावी हाथ में नहीं आई। इस समय

अब वह वेदमें सिन्धु, गंगा आदि शब्द देखते हैं तो वह सागर और शुद्ध जलकी नदी के अर्थ नहीं समझ सकते । जिस प्रकार वैदिक संस्कृत की दृष्टिसे ब्राह्मण किसी भारतीय वेद वेत्ता वा विद्वान् का नाम नहीं किन्तु एडिसन, मैक्स मूलर सब ही महा विद्वान् भारतीय एवं विदेशीय इस नाम के पात्र हैं, ठीक उसी प्रकार समझ लेना चाहिए कि जो भी समुद्र वा सागर है चाहे वह भारत के निकट है चाहे युरोप के निकट वह वैदिक दृष्टिसे **सिन्धु** है । भूलोक में जिस भी नदी का जल निर्मल है चाहे वह अफ्रीका में बहती है वह निस्संदेह **गंगा** है कारण कि वेद के शब्द यौगिक और अर्थ तर्क पोषक हैं । वेद में इस लिए जहां कोई कोई देश विशेष की घटना का इतिहास वा एक देशीय भूगोल का वर्णन नहीं वहां असंभव वार्ताओं की भी गंध तक नहीं कारण कि वेदमंत्रों के अर्थ प्रकाशक, मंत्र दृष्टा, **परम सत्यवादी परम परोपकारी** और **परम मेधावी** मनुष्य होते हैं । उनके नमूने प्राचीन काल में कणाद, गौतम, याज्ञ वल्क्य आदि समझने चाहिएं । बुद्धिमान् मनुष्य कभी असंभव बात कह सकता है ? मेधावी अर्थात् परम बुद्धिमान् वा परम तर्क शास्त्री किस प्रकार काल्पित कथा वार्ता जो असंभव हो वर्णन कर सकता है । उदाहरणार्थ लीजिए विष्णु के दश अवतार । ऋग्वेदमें **इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्** इत्यादि मंत्र आया है । निरुक्त में जो एक मात्र परम प्राचीन वैदिक कोष की व्याख्या उसमे स्पष्ट लिखा है कि विश प्रवेशने धातुसे विष्णु शब्द बना है और उसके अर्थ सूर्य के हैं । सूर्य प्रकाश में एक रूप से, वायुमंडलमें विद्युत रूपसे और भूलोकमें अग्नि रूप से काम करता है । यह कितना उच्च पदार्थ विज्ञान (Science) का सिद्धान्त जो इन शब्दों में महर्षि यास्काचार्य्य ने जगत मान्य **निरुक्त** के अन्दर वर्णन किया है । आज पश्चिम के वैज्ञानिकोंने यही तो सिद्ध किया है कि Light, Heat Electricity सब ही सूर्य्य से जन्मी हैं और उसके भिन्न भिन्न रूप हैं । इसी प्राचीन तत्वका वर्णन समीक्षक **श्रीयुत ओझाजीने** अपने

लेख में दर्शाया है कि सूर्य के नाना रूप ही वैदिक विष्णु के अवतार समझो। यदि महाशय जोशीपुराजी यौगिक शब्दों के भाव से विष्णु शब्द पर विचार न करते और तर्क सिद्ध संभव अर्थ को छोड़ कल्पित अर्थ करत तो क्या इस उच्च भाव के निकट आ सकते कि विष्णु के अवतार वास्तव में सूर्य्य के रूप और प्रकार हैं। इस लिए सत्य के जिज्ञासुओं वा समीक्षकोंको याद रखना चाहिये कि जिस प्रकार कोई सूर्य के **प्रकाश** से **गरमी** को दूर नहीं कर सकता उसी प्रकार **ऋषियों** से **मंत्रों** को कोई पृथक् नहीं कर सकता। ऋषि मंत्रद्रष्टा अर्थात् वेद की डिक्षनरी वा उसके यथार्थ अर्थ प्रकाशक हैं इस लिए आजजो जिज्ञासा वा समीक्षण की आड़में अन्धेर इस देश तथा यूरोपादि में चल रहा है कि वह वेद मंत्रों के अर्थ अपनी कल्पनाओं से करते हैं यह ठीक नहीं है। वेद मंत्रों के अर्थ करने वाले ऋषि यद्यपि मुक्तिधाम को सिधार चुके हैं, पर वह वेदाङ्ग, उपाङ्ग के रूप में उसके व्याख्यान तथा अर्थ करने की सामग्री छोड़ गए हैं। जो पंडित किसी वेद मंत्र का अर्थ **निरुक्त** आदि की सहायता से नहीं करता वह कभी वेद का तत्व दर्शा नहीं सकता। वेद के सिद्धान्त समझने के लिए प्रथम षट् दर्शनों के सिद्धान्त समझने होंगे और फिर अंग ग्रन्थों के, फिर वेद के सत्यार्थ खुल सकेंगे।

प्रोफेसर मैक्समूलर का कथन है कि **संसार में ऋग्वेद से पुराना कोई भी ग्रन्थ नहीं है**। इस लिए यह और भी आवश्यक है कि प्राचीन आर्य्य संस्कृति के मार्ग दर्शक ऋग्वेद आदि वेदों के यथार्थ अर्थ समझने के लिए हमें अति प्राचीन **निरुक्त** ग्रन्थ की शरण में जाना होगा। आजकल के नए अवैदिक कोषों से जो **ऋषिकृत** नहीं ऋषियों के उच्चतमभाव कैसे समझ में आ सकते है?

हम वर्णन कर रहे थे कि ऋषि आर्य म्लेच्छ यह तीन भेद कर्म से पुराने ऋषि मानते थे, इसको दर्शाने के लिए वात्सायन ऋषि का यह वाक्य कि "ऋषि आर्य्य म्लेच्छानां समान लक्षणम्" पर्य्याप्त है। न्याय-

दर्शन के आप्त शब्द की व्याख्या में यह वचन है। इस से पाया जाता है कि पुराने ऋषि मानते थे कि आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान् और सदाचारी पुरुष, ऋषिकुल, आर्य्यकुल और म्लेच्छ कुल में से होते हैं। म्लेच्छ शब्द का अर्थ व्याकरण की दृष्टि से कुछ भी घृणा सूचक नहीं कारण कि संस्कृत में जो शब्द का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता उसे म्लेच्छ कहते हैं। विदित होता है कि पुराने समय में जो लोग आर्य्य कुल मे जन्म ले कर भी किसी कारण से अविद्वान् रह जाते थे वह स्वभावतः म्लेच्छ संज्ञा के अधिकारी बनते थे। परन्तु उक्त ऋषि सूत्र से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय मनुष्य मात्र को आर्य्य ऋषि वा आप्त बनने का समान अधिकार था।

पुराने समय में धर्म्म शब्द के अर्थ नियम कर्तव्य के थे। मानव धर्म्म शास्त्र कहने से यहां धर्म्म का अर्थ नियम का है। इसी शास्त्र में राज्य का धर्म्म, शिष्य का धर्म्म इत्यादि शब्दों में 'धर्म्म' शब्द कर्तव्य के अर्थ में आया है। आज धर्म्म शब्द के अर्थ भी उसके धातु पर से न लेते हुए लोग कल्पित ले रहे हैं। प्राचीन समय की मानव जाति का धर्म्म ग्रन्थ वेद था, और प्रगति शलि वा आर्य्य मनुष्यों का मंत्र (Creed) वा कलमा गायत्री मंत्र था, जो मनुष्यको प्रगति के शिखर पर ले जाने का जहां एक तरफ दर्शक था, वहां दूसरी तरफ मनुष्य को ईश्वर की direct (व्यवधान रहित) उपासनाका अधिकार देता था।

महाशय आर्शीपुरा के लेख में अनेक स्थलों पर जो उत्तम वर्णन इस बात का मिलता है कि भूलोक के नाना देशों के वासी सूर्य्य की तरफ मुख कर के उपासना करतेथे इसका रहस्य अभी युरोपके पण्डित नहीं समझे कारण कि वह गायत्री मंत्र में सविता शब्द को देखकर 'सविता' के अर्थ सूर्य्य की उपासना समझ लेते हैं। महाशय कोलब्रुक (Colebrook) ने एक स्थल पर लिखा है कि गायत्री मंत्र में इस भौतिक सूर्य्य की उपासना नहीं परन्तु उसके इसमतको अभी तक युरोप के पण्डित नहीं

मानते। वास्तव में यदि युरोप के पण्डित जिज्ञासु और समीक्षक बनना चाहते हैं तो उनको सविता शब्द की व्युत्पत्ति देखनी होगी। जब यह शब्द 'सु' धातु से जो 'प्रसवन अर्थ में है बना है तो इसके अनेक अर्थ जिनमें प्रसवन भाव वा क्रिया हो मानने ही पड़ेंगे। इस लिए भौतिक अर्थों में 'सूर्य्य' अपनी किरणों का प्रसवन कारक होने से इस अर्थ का बोधक है, और ईश्वर जो सूर्य्य का भी करने वाला अर्थात् उत्पादक है वह सचमुच सविता है, और देखिए इसी मंत्र में बुद्धि के विकास की प्रार्थना वा शुभ इच्छा है। भला जड़ सूर्य्य कभी किसी को ज्ञान वा बुद्धि दे सकता है? यह असंभव अर्थ का कभी प्राचीन ऋषि जो तर्क और मेधा के अवतार थे मान सकते थे? नहीं कभी नहीं, पुराने समय में जिस समय बालक वा कन्या गुरुकुल में प्रवेश करती थी उस समय यह ज्ञान मूलक मंत्र पहिले सिखाया जाता था इस लिये सविता के अर्थ यहां पर उत्पादक ईश्वर के हैं न कि सूर्य्य के। यह सत्य है कि भारतीय आर्य्य, ईरानी आर्य्य, मिश्र देशी आर्य्य तथा मेक्सिको आदि अमेरिका देशस्थ आर्य्य कोलम्बस (Columbus) के जन्म से सहस्त्रों वर्ष पूर्व गायत्री मंत्र का जप सूर्य की तरफ मुख करके करते थे ऐसा करने का विधान मानव धर्मशास्त्र में मिलता है और उसका हेतु वेद मंत्रों में दिया गया है कि सूर्य्य रश्मि अनेक प्रकार के रोगों को दूर करती हैं। आज कल यूरोप के डाक्टर भी इस बात को मान गए हैं कि सूर्य्य की रश्मि अनेक रोग निवारक है। "पवित्रण सूर्य्यस्य रश्मिभिः" यजु.। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के एक मंत्र में साफ वर्णन है कि हृत् अर्थात् छाती के रोगों को सूर्य रश्मि हरण करती है। जर्मनी से एक नामी वैद्य लूई कून्हे (Louis kunhe) भी सूर्य्यस्नान (Sun-bath) के लिए यही विधि बतला रहे हैं। अंग्रेजी की कहावत है "Where sun does not enter doctor enters" अर्थात् जहां सूर्य्य नहीं जाता वहां डाक्टर जाता है भी इसी को चरितार्थ करती है। इस लिये सूर्य्य की तरफ मुख करके सन्ध्या वा

गायत्री जप करना एक पन्थ और दो काज वाली बात थी। जैसे युरोप के पण्डित वेद के शब्दों को यौगिक समझते हुए उसके अर्थ बुद्धि पूर्वक करने की प्राचीन आर्ष शैली को ग्रहण करेंगे वैसे वैसे उनको भी भारतीय आर्यों समान यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि वेद में एक सत् चित् आनन्द स्वरूप निराकार सर्वव्यापक, विश्व पति, विश्वोत्पादक सविता की उपासना का ही विधान है जिसका सूचक गायत्री मंत्र है.

श्रीमंत सयाजीराव महाराज बडोदा नरेश महाराजा अकबर के समान सर्व विद्याओं और संस्कृत के कितने प्रेमी और प्रचारक हैं यह बात कथनसे बाहर है। इस प्रगति युग में समीक्षण संबन्धी ऐसे ऐसे उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित करा कर अमर कीर्ति पाना इन्हीं का काम है।

यह आवश्यकता नहीं कि इस में जो कुछ हमने दर्शाया है उससे पाठक सर्वांश में सहमत ही हों। पर हम समझते हैं कि भारत के ऋषियों की सम्मति दर्शाने की हमने यथाशक्ति अल्प चेष्टा की है। हम सब जिज्ञासु हैं सत्य ज्ञान हमारा लक्ष्य है समीक्षा (Research) और संवाद के लिए यह आवश्यक है उन के विचार सुनें। इसी प्रकार इस से पूर्व एक पुस्तक '**त्रिदेव निरूपण**' नामक जयदेव ब्रदर्स द्वारा प्रकाशित हो चुकी है उस में भी स्वतंत्र विचार दर्शाए गए हैं जो जिज्ञासुओं के पढ़ने योग्य हैं।

इस कठिन ग्रन्थ के अनुवाद करने में हमें कभी सफलता प्राप्त न होती यदि **पंडित भवानन्दजी शर्म्मा** भूतपूर्व हिन्दी अध्यापक स्कूल फाइनल क्लास बडोदा हमारा योग्यता, लगन और परिश्रम से हाथ न बटाते जिस के लिए उनके अत्यंत कृतज्ञ हैं।

बडोदा
ता. १५-१२-१९२१.

शान्तिप्रिय आत्मारामजी
(अमृतसर)

मूललेखककी प्रस्तावना

श्रीमंत महाराज सर सयाजीराव गायकवाड़ सेनाखासखेल शमशेर बहादुर की आज्ञानुसार हमने इस ' हिंदुस्थान तथा यूरोप की पुराण कथाओं की तुलनात्मक समीक्षा ' छोटे से निबंध को लिखा है। एवं यह एक अंग्रेजी ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है। अंग्रेजी तथा यूरोप की भिन्न भिन्न भाषाओं में विविध देशों की भाषा, धर्म भावना, संसार घटना, पुराण कथा इत्यादि अनेक दृष्टि से उपयुक्त ग्रन्थों की तुलनात्मक परीक्षा करने वाले एवं परीक्षा के फल स्वरूप साधारण तत्वों के प्रकाशक बहुत से ग्रन्थ होंगे। किन्तु खेद की बात है कि हमारे वाङ्मय में वैसी तुलनात्मक पुस्तकों का एक मात्र अभाव ही है, सुतराम् हमारी ज्ञान की मर्यादा जितनी विस्तृत होनी चाहिए उतनी भी न हो सकी, यह हमें साफ साफ प्रतीत हो रहा है। इस के साथ हम यह भी कहेंगे कि गुजराती वा हिन्दी आदि भाषाके लेखकोंने तुलनात्मक लेख के लिखने का प्रयत्न जैसा चाहिए वैसा अब तक भी जारी नहीं किया। अतः इस छोटे से प्रथम कल्पिक प्रयत्न रूप निबंध से उक्त प्रकार के साहित्य का उषः काल का आरम्भ हुवा है ऐसा भी कह सकेंगे, एवं इन लोगों को विलक्षण लगने वाले प्रयत्न को गुर्जर तथा हिन्दी भाषा के साक्षर विद्वान् उदार अन्तःकरण से देखेंगे, ऐसी हमारी दृढ भावना है। श्रीमन्त महाराजा साहेबने अंग्रेजी साहित्य अने पुराणकथा पुस्तक के तैयार करते समय हिन्दु स्थान की पुराण कथाओं की तुलनात्मक समीक्षा लिख कर इस पुस्तक के साथ प्रसिद्ध करने की अगर आज्ञा न दी होती तो कदाचित् ऐसे नवीन विषय पर लेखिनी चलाने का प्रसङ्ग हम को नहीं मिलता यह बात हम स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं। अब दो बातें पुस्तक के विषय में कह के प्रस्तावना समाप्त करें गे। इस पुस्तक मे चर्चित विषय अति सूक्ष्म है, इस लिये अन्तः प्रविष्ट होने में बहुतों को दिक्कत मालूम पड़ेगी ग्रन्थ बढ़ न जावे इस लिए हमने इस गहन विषय को संक्षेप में

ही लिखा है। याचना के अतिरिक्त यह आशा भी है कि कोई विद्वान् इस कार्य को हाथ में ले कर पूरा करे।

एक बातका हम और स्पष्टीकरण करना चाहते हैं कि इस लेख का विषय एक तरह से हिन्दू समाज के कतिपय भाग की धर्म भावना से संबन्ध रखने वाला होने के कारण से किसीको अप्रिय लगने की संभावना है। परन्तु हम पहिले से ही इस बात को बतला देना चाहते हैं कि हमने इस बात का आविष्करण नास्तिकता को पुष्ट करने के लिए नहीं किया है। बल्कि अपने अगाध बुद्धिशाली आर्य पूर्वजों की प्रतिभा को प्रकाशमें लाने के लिए किया है। हमारे हिन्दु-आर्यो से प्रथमतः स्वीकृत एकेश्वरवाद वेद पुराण आदिमें अनेक प्रकार से वर्णित हैं। धर्मशास्त्र का अभ्यासी यह बात सहजमें समझ सकता है, दूर देशी हिन्दु-आर्यो के ऋषियोंने समाज व्यवस्था को पालन करने के लिये जितना अधिकार उतना ज्ञान ऐसा स्थिर कर, एक मात्र सत्य रूपी बीजको (एकोऽहं बहुस्याम्) इस सिद्धांत के अनुसार अनेक प्रकार से वृक्षाकार में घटाया है। अर्थात् व्यक्ति स्वातंत्र्य को अग्रस्थान देने वाले कुशल धर्माचार्यो को जिसको जितनी प्यास लगी हो उसको उतना पानी मिलजावे ऐसे साधन कर दिये है। हां किसको कितना पानी चाहिये यह प्यासे की प्यास पर है। वेद उपनिषद आदि सूक्ष्म ग्रन्थोंको न समझने वाली बुद्धि को भी पोषक खादतो अवश्य चाहिये, अतएव उच्चकोटि के ग्रन्थों को समझाने का भिन्न रीतिसे कल्याण कारक प्रयत्न हमारे चतुर ऋषियों की तरफ से हुवा है ऐसा हम मानते हैं। हमें जो सूझा है वही हमने लिखा है। इस लेखमें मतान्तर की संभावना है। अतः हमारी अपूर्णता को सम्पूर्ण करके पढने के लिये हम अपने आर्य भाषा भाषी विद्वान् महोदयों से प्रार्थना करते हैं।

पाटण १०-३-१३ ज. पु. जोषीपुरा.

ओ३म्

अवताररहस्य

अथवा

भारतीय तथा यूरोपीय पुराण कथाओं की तुलनात्मक समीक्षा

इस लेख का विषय ही ऐसा है कि उसके यथार्थ स्वरूप को बतलाने के लिये उपोद्घात रूपसे अवश्य दो शब्द कहने ही चाहियें। अर्वाचीन दृष्टि से हिंदुस्थान और यूरोप में इतना वैषम्य है कि इन दोनों का लक्षण ढूंढ निकालना अति परिश्रम साध्य है। तो भी इतिहास आदि साधनों से दोनों देशों में निवास करती हुई प्रजा की उन्नति को कालक्रम से, मर्यादित कर इन दोनों का साम्य बतलाने की हम यथा शक्य चेष्टा करेंगे। तब हमारा यह अन्वेषण कुछ अंशों में अवश्य प्रामाणिक माना जावेगा।

भाषा शास्त्र की उत्पत्ति

जब से यूरोप के पण्डितों ने पृथ्वी की अनेक भाषाओं का अभ्यास करना शुरु किया, तब से एक भाषा की दूसरी भाषा के प्रति साम्य बतलाने वाली भाषा शास्त्र की उत्पत्ति हुई। एवं संस्कृत, ग्रीक, लेटिन, झंद, अरबी, वगैरह मुख्य मुख्य

भाषायें किसी एक मातृभाषा की पुत्रियां हैं ऐसा सिद्धान्त निकाला गया। परन्तु इन सब की मूल मातृभाषा कौनसी है इसका निश्चय पूर्णतया न हो सका, तब उसका ' आर्य भाषा ' ऐसा काल्पित नाम रख दिया गया। १८३५ इस्वी में बोप नामक पण्डित ने एक ' तुलनात्मक व्याकरण ' नामक पुस्तक रच कर भाषा शास्त्र के भवन का पाया डाला, तो भी इससे पहिले १७८६ सन् में सर विलियम जोन्स नामक पण्डितने संस्कृत ग्रीक लैटिन जर्मन और केल्टिक भाषाओं का साम्य बतलाकर उन सब भाषाओं को एक माता की बेटियां कहा था। तर्क दृष्टि से देखने पर भाषा शास्त्र रूपी एक स्वतंत्र अभ्यसनीय विषय की महत्ता का सूचित करने का पहिला मान सर विलियम जोन्स को प्राप्त होता है, तथापि उसको शास्त्रीयता दे कर सुघटित आकृतिमें रखने के लिये बोप ने जो बुद्धि बलांकित श्रम उठाया वह भी कुछ जैसा वैसा नहीं था, उसके बाद भाषा विशारद मैक्स मूलर भट्ट जिन का नाम संस्कृतज्ञों में स्थायी कीर्ति को प्राप्त कर चुका है, उन्हों ने १८६१ इस्वी में भाषा शास्त्र पर अनेक व्याख्यान दे कर उसको प्रसिद्धिमें रख कर उसकी उपयोगिता सिद्ध कर दी, एवं विविध भाषाओं की तुलनात्मक समीक्षा से उत्पन्न अनुमानों से यथार्थता को सर्वमान्य करवाने में उनका कल्पनाबल पाण्डित्य शब्द गौरव बहुत अंशमें अर्थ साधक हो गया था, इस प्रकार अग्रगण्य प्राचीन भाषायें एक ही मातृभाषा की पुत्रियां हैं, यह प्रतिपादन करने

वालों का एक मण्डल ही बन गया, और उस मण्डल के सिद्धान्तों से अनेक अनुमान निकलने लगे। 'एक भाषा से अनेक भाषा' यह सिद्धान्त स्वीकार करने पर एक भाषा बोलने वालों में से ही नाना भाषा भाषी उत्पन्न हुवे यह अनुमान अपने आप निकल आता है। एवं अनेक भाषा भाषी मूलतः एक ही कुल के हैं, यह सिद्धान्त स्थापित किया गया, एवं मातृभाषा को आर्य भाषा ऐसा नाम दे दिया गया, और उस भाषा की पुत्रियां अर्थात् उससे उत्पन्न भाषा भाषियों को आर्य कुल के समझा गया। इस प्रकार आर्य कुल का अनुमान परंपरा सिद्ध अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया। अब आर्य कुल का आदि निवास स्थान खोजने के लिये यूरोपीय पण्डित यत्नशील हुवे, और अन्तमें मध्य एशिया को आर्य प्रजा का पितृदेश ठहरा दिया गया।

आर्य कुल और उसका आदि निवास स्थान

उक्त पाठशाला के सिद्धान्तों के सामने फ्रान्स देश के नृवंश विद्या के उपासकोंने जबरदस्त पुकार मचायी एवं विशेषतः ब्रोका नामक पण्डितने इस सूत्र का प्रतिपादन किया कि 'ऐतिहासिक काल के दरम्यान भिन्न भिन्न जातियों ने अपना अपना जातित्व किंवा मूल स्वरूप बदले बिना अपनी अपनी भाषा में अनेक वार फेरफार किया है' और उससे 'तुलनात्मक भाषा शास्त्र' आर्य प्रजाकी कुलैकता सिद्ध करने में नृवंश

विद्या की दृष्टि से अल्प मूल्य का हो गया है। अर्थात् एक भाषा बोलने वाले एक ही कुल के होने चाहिये, ऐसा अनुमान केवल कल्पनात्मक है ऐसा नृवंश विद्या जानने वालों का कथन था एवं उसको पुष्टि देने वाली वैज्ञानिक शोध होने लगी। टोपिनार्ड जोकि ब्रोका का सुप्रसिद्ध अनुयायी है उसने यह सिद्ध कर दिया कि यूरोप खण्ड के प्रजा के जातीय गुण विशिष्टता की अभेद्यता निरन्तर पुष्ट हो रही है। यदि आर्य प्रजा एशिया से आई हुई हो तो वह अपने साथ अपनी भाषा, अपनी संस्कृति तथा विविध धातु संबन्धी शब्दों के ज्ञान के सिवाय और कुछ भी नहीं लाई इसके मतानुसार सपिंडत्व नष्ट हो गया है, केवल भाषा के संबन्ध से ही फ्रान्स आदि देशों की प्रजा आर्यत्वका पालन कर सकी है; भाषा शास्त्र के पिता एर्डीलैंगने काश्मीरकी घाटियों को मानव जातिका उत्पत्तिस्थान अनुमान करलिया। परंतु झन्द भाषाकी प्राचीनता तथा उसका संस्कृत भाषाके साथ गाढ़ संबंध पण्डितोंको मालूम पड़नेपर एर्डीलैंगके वादकी यथार्थताका अस्वीकार किया गया, और हिन्दू तथा ईरानके लोग किसी समय एकही प्रदेशमें रहते थे ऐसा अनुमान किया गया। १८२० में जे. जी. हूडेने प्रगट किया कि हिन्दू यूरोपीय लोगोंका मूल निकास स्थान मध्य एशियामें था, और उसको वन्दीदाद के प्रथम प्रकरण में दिये हुवे भूप्रदेशों के वर्णन को अपने इस वादकी पुष्टि में रखदिया। तत्पश्चात् १८४८ में जेकब ग्रिम ने

" युरोपकी सर्व प्रजा एशिया मेंसे आई है " ऐसा सूत्र ज़ोरदार भाषा में स्थापित किया और इ. स. १८५९ में मैक्समूलरने अपने 'प्राचीन संस्कृत साहित्यके इतिहास' नामक ग्रंथ में ग्रिमके 'अप्रतीकार्य आवेग' वादको को पुष्टि दे स्वकीय प्राथमिक मतको समर्थन किया, और परिणाममें, आर्य प्रजाका उत्पत्तिस्थान एशिया सामान्यतः लोकमत हो गया। अन्तमें डाक्टर श्रेडरने उक्त सब वादों को छानबीनकर यह निर्णय किया कि संस्कृत भाषा बोलनेवाली प्रजा वायव्य कोणसे निकल हिंदुस्थान में जा बसी थी। वेदके समयमें यह प्रजा सिन्धू नद के किनारे बसतीथी, और उस गंगा आदि नदियों का परोक्ष ज्ञान मात्र था। एवं हिंदू और ईरान वासी इस से पूर्व हिमालय पर्वत के उत्तर में आये हुये एक प्रदेशमें एकत्र होकर रहते थे इसीलिये उनकी भाषा तथा दन्त कथायें प्रायः मिलती हैं उसका कथन यह भी था कि आर्य प्रजा उत्तर के प्रदेशों में रहतीथी, इसके सिवाय उसके आदि निवास स्थान के बाबत कुछभी नहीं कह सकते। भाषाभेदके प्रारम्भके पहिले आर्य प्रजा युरोप खण्डमें रहतीथी, ऐसा वह पुरातन तत्त्व शास्त्र के आधार पर कहता है, अर्थात् आर्य प्रजा एशिया में से जाकर युरोप में बसी ऐसाभी नहीं कह सकते। अन्तमें उक्त पण्डित यह कहता है कि आर्य प्रजा उत्तर से दाक्षिणकी ओर प्रयाण करती गई ऐसा अनुमान निकलता है। अतः मध्य एशिया को आर्य प्रजा का उत्पत्तिस्थान मान लेनाभी युक्तियुक्त नहीं है। इस प्रकार

युरोप के पण्डितों में मतभेद हुवा, और आर्य प्रजाके असली निवास स्थान का पताही न लगा। संस्कृत साहित्य के पारदर्शी भट्ट मोक्षमूलर ने अपने असली मतके बदल आर्य प्रजा मध्य एशिया में नहीं तो एशिया के किसी एक प्रदेश में रहतीथी ऐसा अपना मत व्यक्त किया परन्तु अपने मूल सिद्धांत से हटे नहीं। अन्तमें हिंदुस्थान के अर्वाचीन विद्वानोंका ध्यान भी प्राचीन इतिहास की तरफ झुका। तब पं० बाल गंगाधर तिलकने हिंदुओं के प्राचीन शास्त्रोंका आधार ले उपर्युक्त प्रकारके योरोपीय वादोंकी मीमांसा कर उत्तरीय ध्रुव के प्रदेशों में आर्य प्रजाकी उत्पत्ति हुईथी ऐसा सूत्र सब लोगोंके सामने रक्खा।

कूट प्रश्न और उसका समाधान

उपरोक्त विवेचन से इतना अवश्य सिद्ध हो जाता है कि भाषा शास्त्र और नृवंशविद्या जानने वालोंमें 'आर्य प्रजा आरम्भ में एकही भाषा बोलनेवाली थी'। इस विषय पर अब मतभेद ही नहीं रहा। एवं वह प्रजा एकही कुलकी थी किंवा उस प्रजाका निवास स्थान मध्य एशिया में ही था, इन दो प्रश्नों पर उन में मतभेद साफ साफ मालूम पड़ता है। तोभी हम जहां गहरी दृष्टि से देखेंगे तो वह मतभेद बहुत तीक्ष्ण नहीं है। क्यों कि अपने अपने मतके आग्रही पण्डित विरोधियोंकी युक्तियों को सरल हृदय एवं समाधान वृत्तिसे नहीं देखते यह साफ साफ प्रतीत होता है। अब हमको इतनातो

माननाही पड़ेगा कि संस्कृत ग्रीक लेटिन झंद आदि प्राचीन भाषाओं में बहुत साम्य है; इसी लिये इन भाषाओं को बोलने वालेका आपस में एक समय अवश्य कुछ न कुछ संबन्ध रहा होगा, केवल विवाद इसी बातमें है कि इन सब भाषा-ओं के बोलने वाले एकही जातिके थे या नहीं ? अगर वे एकही जाति के थे तो उनका आदि निवासस्थान मध्य एशिया के प्रदेश थे या उत्तरीय ध्रुव के ? इन दो प्रश्नों में से हम दूसरे प्रश्न के विवेचन द्वारा इसका निर्णय करेंगे। इस से प्रथम प्रश्नका स्वतः निर्णय होजावेगा।

वेद चार हैं। उनमें ऋग्वेद सब से प्राचीन है। वह आजकल के हिंदुस्थान तथा पूर्व कालके हिंदुस्थानके बाहर की आर्य प्रजा का कुछ दिग्दर्शन करानेवाला दर्पण है। उसमें उषाके वर्णन, रातदिनका कालप्रमाण एवं पंच महाभूतों से होने वाली विविध क्रियायें लक्ष्यकर विरचित स्तुतियों से प्रथम दर्शन में इतना तो कह सकते हैं कि वेदान्तर्गत प्रदेशों का अनुभव लेनेवाली प्रजा उत्तरीय ध्रुव के प्रदेश से अपरिचित तो न होनी चाहिये। एवं उत्तरीय ध्रुव के प्रदेश में रहनेवाली प्रजा के मनमें आकाश संबन्धी जितनी बातें आ सकती हैं, उतनेही अंशमें उनकी दृष्टि सीमा के बाहर पृथ्वी तलकी बातों का होना अधिक संभव है। एवं वह प्रजा पंच महाभूतों के प्रति राग द्वेशसे देखे यह भी सम्भवित है। लाभ दायक

प्रसंगों पर स्तुति और उपद्रव कारक प्रसंगों पर द्वेष करे यह भी संभव है। वेदमें किये गये वर्णन हृदय के उच्छ्वास हैं। और उनको पढ़नेसे यह अवश्य प्रतीत होता है कि उत्तरीय ध्रुव में रहने वाली आर्य प्रजा ने स्तुति वा निन्दा द्वारा पंच महाभूत विषयक वर्णन किये होंगे। वे सबवर्णन लिखे नहीं जाते थे बल्कि वंश परम्परा से कण्ठस्थ किये जाते थे। और इसी लिये इनको श्रुति कहते हैं। उत्तरीय ध्रुवसे उतरने के बाद बहुत दिवस पश्चात् जो सुनने में आया वह समभूल न जावे इस लिये लिख लिया गया। इतिहासकी दृष्टि से देखते हुवे और ऐतिहासिक भाषामें हम कह सकते हैं कि जिस समय श्रुति और स्मृति ऐसे दो भेद किये गये होंगे, उस समय भेद के करने वालोंने दो बातें अवश्य ध्यान में रखी होंगी। प्रथम तो जो बातें लोक कथा रूप से वंश परंपरा से लोगों के मुख पाठ होती चली आई हैं, उसी के संग्रह का नाम श्रुति रक्खा गया होगा, और जो कुछ लेखवा स्मरण से इकट्ठा किया गया होगा उस को स्मृति नाम से पुकारा गया होगा। अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी मुख द्वारा चली आ रही कथायें, गीत, तथा बातें भूल न जावें, तदर्थ जो संग्रह किया गया, वह श्रुति, एवं जो बातें प्रत्यक्ष भूली न थीं उनको स्मृति कहा गया। इस तरह श्रुति स्मृति नामक दो भेद ऋषि महर्षियों के द्वारा स्थापित किये गये एवं वेद को अपौरुषेय अर्थात् मनुष्य के बनाए हुवे नहीं हैं ऐसा माना। स्मृति को मनुष्य कृति ही माना, अर्थात् स्मृति काल जनसमाज की व्यक-

स्थित दशा को सूचित करता है। स्मृति विरचन काल से ही पहिले आर्य प्रजा प्रायः हिंदुस्थान के सिन्धु तटपर आकर बसने लगी थी, एवं जनसमाज के व्यवस्था करने का कार्य वहीं शुरू हुआ। श्रुति रची जाने लगी, स्मृति लिखी जाने लगी और कालानुक्रम से पुराण कथाओं की उत्पत्ति होने लगी। इन सब से श्रुतिवाक्य प्रमाणभूत माने जाने लगे युग दृष्टि से देखते हुवे वायु पुराणके ५८ के अध्याय के ५ वें श्लोक के अनुसार द्वापर युगमें श्रुति और स्मृति ऐसे दो भेद हुए, फिर संशयकाल शुरू हुवा। त्रेतायुग में चार पाद का एक वेद था। उसके द्वापर में चार भाग किये गये, अर्थात् द्वापर के पूर्व एक ही वेद था। वही त्रेतायुग की प्रजा का श्रुति रूप हो पड़ा था, एवं त्रेतायुग की प्रजा द्वापर वाले लोगों की पूर्वज थी। हमारे इस लेखमें त्रेतायुग की प्रजा का ही विशेष उपयोग है उतना द्वापर का नहीं।

युग लक्षण तथा तज्जनित अनुमान

अब हम चारों युगों के लक्षणों का विचार करेंगे। क्यों कि युग युग में नवीन आचार विचार की प्रजा उत्पन्न हुई है इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक युग के धर्म के स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया है। सत्ययुग अथवा कृतयुग में प्रजा 'मिथुन स्वभाव' से ही उत्पन्न हुई थी, वह नदी पर्वत सरोवर समुद्र आदि का ही सेवन करने वाली थी, वह प्रजा स्वच्छानुसार फिरने वाली, एकसे रूप की, एवं एकान्त सुख को चाहने वालीथी; उस समय ऋतुयें न थीं ब्राह्मण आदि वर्ण तथा

ब्रह्मचर्य आदि आश्रम भी उस समय नहीं थे। सत्ययुगका स्वरूप इस प्रकार का था, और उससे अनेक अनुमान निकल सकते हैं।

(१) सत्ययुग की प्रजा किसी भी स्थलपर नित्यनिवास करके नहीं रहती थी।

(२) उस समय भिन्न भिन्न ऋतुएं नथीं, अर्थात् वह एक ऐसे प्रदेशमें रहती थीं कि जहां हिंदुस्थान की तरह अनेक ऋतुओं का अनुभव नहीं होता था।

(३) उस समय की प्रजा एक ही रूप की थी। और

(४) उसमें वर्णभेद का जन्म नहीं हुवा था।

इस प्रकार सत्ययुग व्यतीत होने के बाद वह प्रजा अपना मूल प्रदेश छोड़कर नीचे के प्रदेशों की तरफ उतरती हुई आई। जो प्रजा अबतक बिना घर की घूमने वाली थी वह घरों में निवास करने लगी। निर्जल स्थान, खड्डों में पर्वत और नदियों में, वायु पुराण के कथनानुसार किलों का तथा निरंतर जलयुक्त प्रदेशों का आश्रय करने लगीं। निवास स्थान के पास वृक्ष बोये जाने लगे। समुद्र तरफ से आने वाले पवन के कारण वृक्षों की शाखायें टेढ़ी हो गई। तब प्रजाने भी उसका अनुकरण कर शाखा वाले घर बांधे। यह सब त्रेतायुग में हुवा। सत्ययुग में धर्म के चार पाद थे वे त्रेतायुग में तीनही रह गये। त्रेता का अर्थ अग्नि होता है। इस से सत्ययुग में धर्म के चार पाद

अर्थात् चार अग्नि होने चाहिये अर्थात् सत्ययुग की प्रजा चार श्रेणी में विभक्त हुई होगी, और उसमें से जब एक समूह अलाहिदा हुवा होगा; तब शेष तीन समूह की प्रजा से बने हुवे काल को त्रेता कहा होगा, एवं वायुपुराण के पूर्वार्ध के आठवें अध्यायमें यह लिखा है कि त्रेतायुग की प्रजा सुमेरुस्कंद (कश्मीरके उत्तर समरकंद) तक पहुंची थी, और वहां उस को भिन्न भिन्न प्रकार की वनस्पति का अनुमान हुवा था, अर्थात् त्रेतायुग हिंदुस्थान के बाहर जहांतक आर्य प्रजा गई थी वहां तक फैला हुवा था, उसमें से भी जब एक टोली अलग हुई, तब द्वापर का आरंभ हुवा था, और उस समय श्रुति और स्मृति का भेद कर के वायव्यकोण से आती हुई आर्य प्रजाने अपने परंपरा से आए हुवे धर्म साहित्य का स्थूल रूप बांध लिया होगा ऐसा अनुमान से कह सकते हैं। द्वापर में भी विक्षेप होने पर एक समूह अलग हो गया। फलतः एक अग्नि कम होने से कलियुगका आरंभ हुवा। और धर्म का एक अंश कलियुग में रह गया, अग्नि को संज्ञा मान कर ऐतिहासिक भाषा में कहें तो युगयुग में आर्य प्रजा के मूल चार गोत्रों से बने हुवे संघ से एक के पश्चात् दूसरा गोत्र न्यून होता गया, और अन्त में हिंदुस्थान की भूमि में मूल आर्य प्रजा में से एक ही गोत्र आ कर बसा, ऐसा हम कह सकते हैं।

सम्पूर्ण ऋग्वेद एक ही समय में नहीं बना है, एवं उस की ऋचायें भी किसी एक ही व्यक्ति के हाथ से नहीं बनी,

ऋग्वेद में गंगा यमुना के प्रदेशों का उल्लेख नहीं है। सिन्धु नदी का उल्लेख है, उससे कदाचित् ऐसी कल्पना करें के सिन्धु तट वासी आर्योंने ऋग्वेद बनाया होगा, लेकिन यह भी ठीक नहीं क्योंकि वहां तो वह संपूर्ण ग्रथित हुवा है। सिन्धु तट से परिचित ऋषिओंने उस नद को उद्देश कर जो कुछ गाथा है वह भी उसमें ग्रथित किया होगा सिन्धु तट से परिचित आर्यों का काल द्वापर होना चाहिये। सिन्धु तथा उसके उत्तर पश्चिम में आये हुव प्रदेशों में उस समय आर्य प्रजा के दो गोत्र साथ साथ निवास करते होगें ऐसा अनुमान कर सकतें हैं। आर्य लोग पीछे से आगे बढ़ने के पहिले ही उन दो गोत्रों में से एक गोत्र पश्चिम में ही रह गया, और दूसरे गोत्र के आर्य सिन्धु नदी से आगे प्रयाण कर पूर्व के तरफ जाने लगे थे, परिणाममें इन दोनों गोत्रों के अन्दर बहुत अन्तराय बढ़ा, कालान्तर में इतना वढ़ गया कि दोनों गोत्र एक दूसरे से भिन्न भिन्न गिने जाने लगे। गंगा यमुना के प्रदेश तक आर्यलोग पहुंचे तब तक द्वापर युग था, उस युग के सामाजिक जीवन में कारणवश से प्रारम्भ हुवे कलह में रूपान्तर होते हुवे प्रजा के दो भाग हो गये, तथा सिन्धु के पश्चिम की प्रजा एवं पूर्व की प्रजा एक दूसरे से भिन्न मानी जाने लगी एवं कलियुग का प्रभाव दृढ मूल होने लगा।

इसतरह युगों के लक्षणों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है किः—

(१) हिंदुस्तान की आर्य प्रजा सिन्धु नदी के पश्चिम के प्रदेशों में निवास करती हुई आर्य प्रजा के साथ मिलगईथी,

(२) वे दोनों प्रजायें दो गोत्रों से बनी हुई अग्नि पूजक थीं ।

(३) ऋग्वेद सिन्धु नदी के पास के प्रदेशों में आखिर ग्रथित हुआ, उससे पहिले उन दोनों प्रजाओं का धर्म साहित्य एक ही प्रकार का था ।

ऊपर की गई युग के लक्षणों की समीक्षा के परिणाममें हम देखते हैं कि भारत की आर्य प्रजा वायव्य कोण से आकर बसी है । उससे पहिले वह प्रजा दो गोत्रों की बनी थी वह समय द्वापर युगका था । उस युग में आर्य प्रजा के तीन विभाग हो गये थे और उस प्रत्येक के पास अपनी अपनी अग्नि थी । त्रेता के पहिले सतयुग था । उस समय में भी सम्पूर्ण आर्य प्रजा चार विभागों की बनी हुई थी । और उन चारों के पास चार अग्नि थे । इस प्रकार जिस तरह विभाग बनते गये उस प्रकार आर्य प्रजा के भी हिस्से होने लगे । ऐसा मानने पर उसका प्रयाण मार्ग भी हम जान सकेंगे । द्वापर युग में आर्य प्रजा हिन्दुस्थान के वायव्य कोण के प्रदेश में थी । इसके आने से पहिले त्रेतायुग की प्रजा का निवास स्थान भी वायव्य कोण कहा जा सकता है, एवं त्रेतायुग में सुमेरु को वत्स बनाकर पृथ्वी के दोहन का इशारा-वायुपुराण

में है। उसे आजकल समर कन्द के नाम से परिचित सुमेरु स्कन्ध के प्रदेश में त्रेतायुग की प्रजा रहती थी ऐसा कह सकते हैं, हिंदुस्थान में आर्य प्रजा वायव्य कोण से आई ऐसा कहने में बाधा तो नहीं लेकिन वह पश्चिम—उत्तर के प्रदेशों में रहतीथी ऐसा भी कह सकते हैं। आजकल के हिन्दुओं में एक धर्मशास्त्र के अनुकुल रूढ़ी भी है उसका पृथक्करण करने पर आर्य लोग उत्तर से दाक्षिण की तरफ चलते गये यही मत सिद्ध होता है, जब हिन्दुओं में कोई मरता है तब उसका सिर हमेशा उत्तर में रखकर चौक में उसको सुलाते हैं, और उसके पैर दक्षिण के तरफ रक्खे जाते हैं। उत्तर में रहे वह देव, और दक्षिण में रहे वह पितृ, इस सूत्र से यह अनुमान निकलता है।

पूर्वोक्त विवेचन से इतना तो सूचित होता है कि आर्य प्रजा एशिया खण्डके मध्य भाग में उत्तर से आकर बसीथी। त्रेतायुग संबन्धी वर्णन से सूचित होता है कि आर्य लोग समुद्र के किनारे रहते थे, क्यों कि समुद्र की ओर से आती हुई बेगवाही पवन की गति से वृक्ष की शाखायें टेढ़ी हो जाती थीं, उसीका अनुकरण कर उन्होंने शालायें (मकान) बांधने का काम सीखा था अर्थात् त्रेतायुगमें आर्य समुद्र से लेकर सुमेरु पर्वत तक के प्रदेश में बसने लगे थे, इतनाही नहीं किन्तु वेद में किए गए नौकाओं के वर्णन से विदित होता है कि आर्य लोग समुद्र में प्रवास करना भी जानते थे, अतएव उत्तरीय

समुद्र का ज्ञान उनको था ऐसा सिद्ध हो जाता है। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग, उषा सम्बन्धी एवं समुद्रयानों में किए हुवे पराक्रमों के वर्णनों से तथा ज्योतिषशास्त्र विषयक इशारों से आर्य लोग उत्तरीय ध्रुव में रहते थे ऐसा आसानी से कह सकते हैं।

अब हम हमारे विषय के लिए उपयुक्त आर्य प्रजाका उत्तरयि ध्रुव प्रदेश से ले कर हिन्दुस्थान तक (सिन्धु स्थान) प्रयाण मार्ग भौगोलिक दृष्टि से खैंचना चाहते हैं।

आर्य प्रजा का निवास स्थान उत्तर ध्रुव के प्रदेशों में था, वहां रहनेवाली आर्य प्रजा एक रूप की एवं वर्णाश्रम धर्मरहित थी, स्वेच्छा से भ्रमण करनेवाली थी, कालान्तर में किसी कारण से वह प्रदेश छोड़ना पड़ा, तब उस में से एक हिस्सा यूरोप खण्ड के उत्तरमें आये हुवे स्कैन्डिनेविया मे उतरी होगी ऐसा अनुमान सहज में किया जा सकता है, क्योंकि स्कैन्डनेविया शब्द (स्कंधनिवास) संस्कृत शब्द होगा ऐसा भाषा शास्त्र के आधार से सिद्ध होता है। इस प्रदेशमें उतरने के समय त्रेतायुग चल रहा होगा। कालान्तर में प्रजाकी अभिवृद्धि अथवा प्रकृति कोप से उस प्रजामें से अनेक टोलियां बन कर आगे आने लगीं, एक समूह इस समय के यूरोप खण्ड के भूप्रदेश के उत्तरीय भाग में उतर पड़ा, और दूसरा समूह स्कंधनिवास के पूर्व तरफ के प्रदेशमें

हो कर अग्निकोन की तरफ झुकता हुआ कॉकेशस तक जा पहुंचा, यह कॉकेशस पर्वत विश्वामित्र के पितामह कुशिक के नाम पर मालूम पड़ता है, भाषा शास्त्र के नियमानुसार 'श' का 'क' और 'क' का 'श' होता है, एवं इ का ए और उ का ओ भी होता है, और विसर्ग के स्थान पर स् भी रख सकते हैं, उस से 'कुशिकः' का 'ककेशस' होना संभवित है। कास्पियन समुद्र का नाम शायद इसी तरह 'कश्यप' के ऊपर स पड़ा हो, और जो ऐसा हो तो आर्य लोग त्रेतायुग में कॉकेशस पर्वत और कास्पियन समुद्र के भाग पर होते हुये सुमेरु स्कंध तक पहुंचे हों ऐसा कह सकते हैं। इस स्थान की बसी हुई आर्य प्रजा में बहुत दिनों तक विभाग नहीं पड़े थे, लेकिन कुछ समय बाद प्रजाकी अभिवृद्धि होने से अथवा धर्म पर संशय उत्पन्न होने से मतभेद उत्पन्न हुवा, और फिर पृथक् होने का मौका आया, इसमें से एक भाग काकेशस पर्वत के पश्चिम में आये हुवे प्रदेशों में घूमता हुआ कार्पेथियन के प्रदेशों में जाबसा, और उससे आजकल इटाली नामक प्रदेश में रहने लगीं। दूसरी श्रेणी कास्पियन समुद्रको चक्कर दे कर, दक्षिण के तरफ उतर कर सुमेरु स्कंध तक जा पहुंची, तब द्वापरयुग का आरंभ हो चुका था। थोड़े दिनों के बाद बुद्धिमें विभ्रम होने से उस प्रजाके दो विभाग हो गए। एक विभाग ईरान की तरफ गया वही विभाग कालान्तर में तुरगस्थान आदि प्रदेशों मे होता हुवा मिसर ग्रीस आदि देशों में

जा पहुंचा, शेष विभागने वायव्य कोण से सिन्धुस्थान को अपना निवासस्थान बनाया, फिर कालक्रम से आगे बढ़ उत्तरीय हिन्द के तमाम प्रदेशों पर अपना अधिकार जमाया। हिन्दुस्थान में आर्य लोगों के आने तक एवं द्वापर में चार वेदों के चार विभाग बनने के पहिले तक ईरान के तरफ गए हुवे एवं हिन्दुस्थान में उतरे हुवे आर्य आपसमें बन्धुभाव से रहते थे किन्तु जबसे धर्म तथा अन्य कतिपय कारणों द्वारा मतभेद हो जाने से वे एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हो गये एवं आपसमें शत्रुत्त्व हो गया। वैदिक भाषा में असुर शब्द का अर्थ देव होता है और पारसियों के धर्म ग्रन्थों में भी असुर शब्द देव के अर्थ में वर्ता गया है अतः यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पारसी तथा आजकल के हिन्दुओं के पूर्वज पहले एकही जातिके थे परंतु जैसा हम ऊपर कह आए हैं उसी प्रकार इन दो गोत्रों के बीचमें धर्म कलह उत्पन्न होनेसे पारसियों के पूर्वज अपने आपको ‘ असुर ’ कहलाने लगे जिससे हिंदुओं के पूर्वज अपने आपको सुर कहलाने लगे इतनाही नहीं असुर को देवशत्रु समझ कर तिरस्कार करने लगे थे। पारसी लोग अग्निपूजक हैं, मिसर में भी अग्नि पूजाका प्रचार था, एवं ग्रीस आदि देशों में सूर्य पूजा अर्थात् अग्नि पूजा होती थी। यह बात भी अपने पूर्वजों की एक वंश बतलाने के लिए काफी है।

उपर्लिखित विवेचन किसीको अप्रासंगिक लगेगा किन्तु आर्य प्रजा संबन्धी कठिन प्रश्नों का समाधान करने के

लिए वह अतीव उपयुक्त है। आर्य प्रजाकी मूल भाषा का स्वरूप सूक्ष्मांश में समझने के लिए उपर्युक्त (मीमांसा) विवेचन की आवश्यकता है। उत्तरीय ध्रुव प्रदेश में जब आर्य प्रजा रहती थी, तब उस की भाषा एक ही थी, तो भी उसका योग्य विकास नहीं हुवा था, उसके जब प्रथम विभाग पड़े, तब उनका प्रत्येक भाग मूल भाषा के शब्दों को ले कर अपने नए निवास स्थान पर जा कर रहने लगा, और जैसे जैसे अनु· भव प्राप्त करते गए वैसे वैसे नवीन शब्दों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, उसी प्रकार वह प्रत्येक विभाग अपने शब्द भंडार की अभिवृद्धि करने लगा। शीतोष्णादि प्राकृतिक कारणों से उच्चारण में भी भेद पड़ने लगा, एवं परिणाम में भिन्न भिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हो गई। जो विभाग (स्केन्डिनेविया) स्कन्ध निवास से दाक्षिण की ओर उतर कर पूर्व के प्रदेशों में हो कर कैस्पियन समुद्र की तरफ जा बसा था, उस की भाषा में जब तक भेद न पड़ा था, तब तक उस की भी भाषा एक ही थी, और उस के लिये प्रमाण लैटिन स्लाव इत्यादि भाषाओं के शब्द, पारसियों का धर्म शास्त्र तथा हिंदुओं के वेद की भाषा की तुलना करने से मिल जाता है। इस के अतिरिक्त, वहां से जो श्रेणी ईरान आदि देशों में हो कर ग्रीस आदि देशों में जा पहुंची थी उस की भाषा भी इसी बात को पुष्ट करती है। संस्कृत, झन्द, ग्रीक, लेटिन आदि भाषायें आपस में एक दूसरे से बहुत मिलती हैं इसका भी एक मात्र कारण यही है कि इन सब भाषाओं के

बोलने वाले आर्य प्रजा के प्रथम विच्छिन्न होने के बाद भी वहुत देर तक एक दूसरे से अलहिदा रहे थे, फलतः कैस्पियन समुद्र तथा काकेशस पर्वत के आस पास रहने वाली प्रजाओं से ही उक्त भाषा बोलने वाली प्रजा उत्पन्न हुई हैं, यह हम सहज से कह सकते हैं, और उतने अंश में भट्ट मोक्ष मूलर के कथनानुसार मध्य एशिया को आर्य प्रजा का उत्पत्ति स्थान कहें तो कुछ बुरा नहीं, परन्तु इस से आर्य प्रजा का मूल निवास स्थान कॉकेशस वा कैस्पियन समुद्र के आसपास के प्रदेश हैं यह भट्ट मोक्ष मूलर की न्यांई कल्पना कर लेना यथार्थ नहीं है, क्योंकि अगर ऐसा मान लेवें तो यूरोप खंड के उत्तरीय प्रदेशों की भाषा तथा दन्त कथाओं मे आने वाले वर्णन से मध्य एशिया वाली आर्य प्रजाओं की भाषा तथा दन्त कथा से मिलती हुई बातों का समाधान नहीं हो सकता। इतना तो हम बिना संकोच के साथ कह सकते हैं कि पण्डित मोक्ष मूलर का मत दाक्षिण तरफ की भाषाओं के बाबत में ग्राह्य हो सकता है, लेकिन मध्य एशियाही आर्य प्रजा का आदि निवास स्थान है, यह उनका अभिप्राय माना नहीं जा सकता। इसी तरह जो यूरोपीय पण्डित मेक्समूलर से विरोध कर यूरोप देशान्तर्गत आर्य प्रजा को एशिया खंड की आर्य प्रजा से भिन्न कुलकी बतलाना चाहते हैं उनका मत भी स्वीकार करने लायक नहीं है। मूल आर्य प्रजा एक रूपकी, एक ही वर्णकी थी, और, उपर्लिखित कथनानुसार भिन्न भिन्न समय में उन में विच्छेद

पड़ता गया, विच्छिन्नतासे ही उन में भाषा भेद उत्पन्न होने लगा। एक बार भेद के प्रारंभ होते ही फिर क्या था, उसकी वृद्धि भी होनी लगी, इसी नियम के अनुसार कालक्रम से भाषा भेद होना स्वाभाविक ही है। मूल प्रजा जब दो हिस्सों में बट गई, और उन दोनों हिस्सों का जब स्वतंत्र विकास होने लगा फिर कालक्रम से दो हिस्सों के तीन भाग हुवे और उनमें से दो यूरोपखण्ड तक जा पहुंचे, एवं कालवशात फिर अपने मूल संबन्धियों से जा मिले। इस तरह बड़ा भारी संकर हो गया तब यूरोप की भाषायें भी परस्पर मिल गई एवं प्रजाओं का रक्त भी धीरे धीरे अनेक परिवर्तनों के आधीन होकर संकरता को प्राप्त हो गया, एवं प्रारंभ में आश्रम धर्म किंवा वर्णभेद को जानने वाली आर्यप्रजा न होने से इस प्रकार की भेद भावना का यूरोपखंड में प्रवेश न हुवा, और जो दो हिस्से ईरान और हिंदुस्थान के तरफ निवास करते थे, उन का कुछ समयतक एक मत रहा परंतु धर्म द्वारा विभ्रम उत्पन्न होने पर अर्थ भेद उत्पन्न हुवा और एक दूसरे से जुदा होने का समय आने पर हिन्दुस्थान के आर्य ईरान निवासी आर्यों से पृथक् हो गये, उनकी भाषाओं का विकास भी भिन्न प्रकार का होने लगा।

अब हमें पूर्वोक्त कथनानुसार स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारे आद्यपूर्वज सृष्टि के आदि काल में एक ही स्थानपर एक ही समूह में निवास करते थे, इतना ही नहीं वे एक भाषा बोलने

वाले तथा एक ही धर्म के मानने वाले थे, अग्नि, और उसके प्रतिनिधिरूप मित्र, अर्थात् सूर्य उनकी पूजा का केंद्र था, एवं पुराणों में वर्णन किये गये चार युग वे मूल आर्य प्रजा के चार अवस्थाओं के काल मापक मर्यादा चिन्ह के समान हैं। इसी लिये उन युगों को ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी करने में किसी प्रकार की हानि नहीं दीखती। अर्वाचीन विज्ञान शास्त्रियों के मतानुसार उत्तर ध्रुव के प्रदेश एक समय रहने लायक थे। अतः मानव जाति के वेही आदि उत्पत्ति स्थान थे इस में कुछ भी आश्चर्य नहीं है। आधुनिक विज्ञानशास्त्री पृथ्वी रचना के जो मानचित्र आलेखित करते हैं, उन को देखते हुवे स्कंधनिवास (स्केन्डिनेविया) का प्रदेश प्रथम आस्तित्व में आया था; और फिर जिस तरह पृथ्वी के प्रदेशों के गुणों में फेरफार होता गया, एवं मानव जाति के मूल कुल की वृद्धि होती गई, उसी प्रकार मूल मनुष्य गुण में भी विभाग होते गये, और वे सब अपनी अनुकूलता के अनुसार अपने लिये आश्रय स्थान ढूंढने लगे। युग चतुष्टय के लक्षणों का विचार करते हुवे मानव समाज के विकास का क्रम, उक्त प्रकार के आधुनिक विचारकों के मतानुसार होना अधिक संभव है। प्रत्येक युग में मानव जाति के आदि आर्य कुलके जो भाग कालक्रम से बनते गये उनको संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं।

(१) कृत वा सत्य युग में आर्य प्रजा उत्तर ध्रुव के प्रदेशों में रहती थी, और उसका निवासस्थान सामान्यतः

स्कन्धनिवास (स्केन्डिनेविया) के प्रदेश थे। वहांसे प्रयाण करनेकी जब प्रेरणा हुई तब उनमें से कुछ तो वहां ही घर बनाकर रह गये, और उनका बड़ा भाग जमीन के रास्ते आज कल के रशिया के प्रदेश से काकेशस पर्वत तक उतर कर शनैः शनैः फैल गया था।

(२) कुशिकस् वा काकेशस की ओर उतर कर वह समूह व्यवस्थित हुवा, एवं उसकी तीन श्रेणियां बनाई गई और उसको 'त्रेता' नाम से कहा गया। उस त्रेतायुग में यह समूह आज कल के स्लाव प्रदेशों से लेकर काश्मीर के उत्तर में आये हुवे समरकन्द तक वा सुमेरु स्कन्ध के आसपास के प्रदेशों में फैल गया, उनमें भी अनेक कारणों से एक अग्नि के कम होने पर अर्थात् एक भागके घटने पर—

(३) द्वापर युग के नाम से शेष बची हुई आर्य समाज की पुनः व्यवस्था हुई, और हिन्दु तथा पारसियों के पूर्वज साथ साथ रह कर जीवन यात्रा करने लगे, लेकिन बहुत दिन बाद धार्मिक मत भेद उत्पन्न होने पर द्वापर के संध्यांशमें उस के भी दो विभाग हो गये।

(४) अर्थात् फिर अग्नि का एक अंश कम होने पर कलियुग का प्रारंभ हुवा, और उस समाज के दोनों अंग विभक्त हो कर एक दूसरे के शत्रुरूप हो गये।

इस प्रकार का विभाग क्रम दृष्टि में रखते हुवे हम जो इस निबन्ध का उपयोगी सार निकालेंगे तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि:—

(१) स्कंधनिवास व स्कैन्डिनेविया अर्थात् नोर्स प्रजा की पुराण कथायें हमारे हिन्दुस्थान की पुराण कथाओं से बहुत ही कम मिलती हैं।

(२) ग्रीस, इटली, ईजिप्त इत्यादि दक्षिण यूरोप में प्रचलित पुराण कथायें हमारी कथाओं से किसी अंशमें मिलती हैं।

(३) हिन्दु और ईरान निवासी पारसियों की पुराण कथाएं उक्त दोनों वर्गों की अपेक्षा अधिक मिलती हैं, किन्तु इन दोनों कुलों में उत्पन्न हुवे धर्म द्वेष के कारण शत्रुता के तत्व को अपवाद रूप ही समझना चाहिये।

हिन्दू तथा पारसियों के पूर्वजों का सपिण्डत्व

अब हम अपने मूल विषयपर आजावेंगे। पारसियों का धर्म पुस्तक बन्दीदाद को देखते हुवे यह मालूम पड़ता है कि चाहे जिस कारण से पारसिकों तथा हिन्दुओं के पूर्वजों में धर्म विक्षेप उत्पन्न हो गया था, और इसी से उनके दो विभाग पैदा हो गये थे। इस कलह से उनका शत्रुत्व बहुत बढ़ गया था और पारसिकों को जो प्रिय था वह हिन्दुओं को अप्रिय हो गया था। इन दोनों के पूर्वजों के एकता का अंत होनेपर उन की सामान्यतः पहिचान करने वाला जातिदर्शक असुर यह नाम हिन्दुओं को खराब लगने लगा। असुर इस शब्द का अर्थ वेद में (दिव्य गुणयुक्त) ऐसा किया है, इस लिये पारसीक जब अपने को " असर (अहुर) " कहलवाने लगे, तब हिन्दुओं के

पूर्वजोंने अपने को (सुर) शब्द लगाकर विरोध का स्थायीरूप देदिया। दिति के पुत्र हिरण्यकशिपुने देवों के साथ लड़कर इन्द्र की अधीश्वरता छीन ली थी। इस कथा से मालूम पड़ता है कि असुर और देवताओं का युद्ध हुवा था, एवं विष्णुने देवताओं का पक्ष ले कर हिरण्यकाशिपु को हरा कर उसका नाश किया था, परिणाम में असुरों को इन्द्र के प्रति धिक्कार तथा शत्रुता पैदा हो गई थी इतनाही नहीं बल्के बन्दीदादमें लिखा है तदनुसार इन्द्रादि सब सुरों को उपद्रव करने वाला समझ कर उनसे अपना रक्षण करने के लिये अहुर मझद (असुर महत्) को उद्देश कर प्रार्थना करने लगे थे इसी समय से इन्द्र हिन्दुओं के देवताओं का अधिपति हुवा, और असुर 'दिशाओं में चले गये' यह सब हुवा तब से असुर और देवों का सम्बन्ध हमेशा के लिये छूट गया। परंतु इस से पहिले ये सब एकही कुल में साथ ही रहतेथ और इस का प्रमाण वेद से ही मिलता है। पूर्वोक्त कथनानुसार वेद सिन्धु नदी के तटपर गूंथे गये थे, अर्थात् वेद में आने वाली बातें उससे पूर्व रची जा रही थीं ऐसा कहा जा सकता है। अट्ठाईसवें द्वापर के अंशका नाश होते समय सुर असुरों में युद्ध होते समय असुर जुदे हुवे परन्तु उसके पहिले तो वे दोनों कुल एकही धर्म के थे, इसलिये उभय धर्म के शास्त्रों के शब्द एक दूसरेसे बहुत मिलते हैं। वे शब्द एकही अर्थ में प्रयुक्त हुवे हैं। वेदान्तर्गत शब्द जैसे—यज्ञ, होतृ, अथर्वन्, ऋत, सोम, आपः, भग, वायु, अपांनपात्, गन्धर्व कृशानु, द्रुह,

योतुः, मित्र, वृत्रहन्, वगैरह अवस्ता के यजन, जोतर, अथ्रवन अश, होम, अपो, बघ, वायु, अपम्नापात, गन्दरेव, केरीस, द्रुज, यातु, मिथ्र, वेरेथ्रघ्न, प्रभृतियों से अर्थ दृष्टि से भी मिलते हैं, इतनाहीं नहीं किन्तु इस समय के पारसीक और हिन्दुओं के पूर्वजोंका एकही धर्म था, ऐसा ज़न्द अवस्ता के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। देवोंका आह्वान करते समय होने वाली वैदिक यज्ञ क्रिया के लिये इष्टि तथा आहुति शब्द अवस्ता की इष्टि और आहुति से मिलती है एवं अग्निस्तोम संबन्धी वैदिक धर्मक्रिया पारासियों की इजश्नी के साथ समता रखती है। वेदान्तर्गत वृत्रवध विषयक कथा, एवं त्रैतन और थ्रएतओन की कथाएं भी आपस में मिलती जुलती हैं, इस तरह के अनेक उदाहरणों से आजकल के हिन्दू तथा पारासियों के पूर्वजों की कुलैक्यता सिद्ध होती है, इससे हमारा यह उद्देश्य नहीं कि हम इन दो जातियों की ही पुरानी कथाओंकी तुलनात्मक समीक्षा करें, हां इसवाद के पुष्टिदायक प्रमाण देकर इस विषय को हम यहीं समाप्त करेंगे, इस तरह द्वापरयुग विषयक वर्णन हमको छोड़ना ही पड़ेगा। अतःत्रेतायुग संबन्धी आर्य प्रजाकी कुछ बातों का विचार कर, दक्षिण यूरोपान्तर्गत ग्रीसादि प्रदेशों की कथाओंका हिन्दी आर्य कुल की कथाओं के साथ तुलना करेंगे।

संस्कृत, ग्रीक, लैटिन जर्मन, स्लाव, नौर्स आदि भाषाओं में आये हुवे शब्दों की व्युत्पत्ति तुलनात्मक शब्द शास्त्र की

दृष्टि से विचार करने पर इतना तो स्वतः सिद्ध हो जाता है कि उक्त सब भाषाओं के बोलने वाले मानव जाति के इतिहास में एक समय आपस में अति परिचित थे। इन सब भाषा बोलने वालों के पूर्वजों की विचार परंपरा भी एक कोटि की ही थी ऐसा अनुमान भी सहज से निकल आता है। सृष्ट पदार्थों का प्रथम दर्शन होते ही उन आर्य पूर्वजों के चितपर जो बातें अङ्कित हुई, वे सब वाणी द्वारा प्रदर्शित करने के लिये जिन शब्दों की योजना की गई वे उस समय की प्रजा को मामूली से हो गये थे। फिर मूल प्रजा में स्वतंत्र भाषा विकास प्राचीन तत्वों को लक्ष्य बिंदु में रख कर होने लगा। परिणाम में मूल विचारों का एवं नवीन विचारों का संमिश्रण होने लगा, संस्कृत ग्रीक, लैटिन स्लाव और कुछ कुछ पुरानी जर्मन आदि भाषाओं के शब्द अधिक आपस में मिलते हैं। यद्यपि यह बात शब्द शास्त्र सिद्ध करता है तो भी संस्कृत भाषा के शब्द तथा संस्कृत साहित्य की कथायें ग्रीक लैटिन तथा स्लाव आदि दक्षिण यूरोप में प्रचलित शब्द तथा कथाओं के साथ अधिक अंश में साम्य रखती हैं, यह बात भी याद रखनी चाहिये। इस प्रकार के अपवाद से अपने आप यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रीक लैटिन स्लाव आदि दक्षिण यूरोप में रहने वाली आर्य प्रजायें उत्तर यूरोप की आर्य प्रजाओं की अपेक्षा ईरान तथा हिंदुस्थान की आर्य प्रजा के साथ अधिक संबन्ध रखनेवाली किसी समय क्या थीं? उत्तर 'हां' ही मिलता है। हमारे पूर्व कथ-

नानुसर त्रेतायुगमें आर्य कुल का संक्रमन यूरोप के उत्तर प्रदेशों से वायव्य कोण की तरफ काकेशस तक हुवा था, अर्थात् ग्रीक लैटिन, स्लाव झन्द, तथा संस्कृत भाषा बोलने वाले आर्यों के पूर्वज एक भाषा बोलने वाले एवं एक ही विचार के लोग थे ऐसा स्पष्ट मालूम होता है। यदि ऐसा हो तो दक्षिण यूरोपान्तर्गत तथा एशिया खण्डान्तर्गत आर्य प्रजा का कुल एक ही होना संभवित है। त्रेतायुगमें उक्त एकत्रित आर्यों में विक्षेप होने पर स्लाव आदि मध्य यूरोप के आर्य पृथक् हो गये एवं परिणाम में लैटिन स्लाव आदि नाम से परिचित प्रजा का संबन्ध एशिया खण्ड की आर्य प्रजा से भिन्न हो गया। तत्पश्चात् ग्रीस आदि प्रदेशों की तरफ कालक्रम से एशिया खण्ड की शेष आर्य प्रजाओंमें से कितनी ही श्रेणिएं उतर पड़ीं, और उनका उस तरफ जाना काल दृष्टि से जितना देरीसे हुवा, उतना ही उनकी तथा एशिया खण्डान्तर्गत आर्य कुलकी विचार परंपरा में अधिक समता रही, अर्थात् हिंदु, पारसी तथा ग्रीक लोगों के विचार एवं आचार जितने अंश में मिलते हैं उतने ही अंश में मध्य यूरोप में रहने वाली आर्य प्रजा के आचार विचार काल भेद से नहीं मिलते। अर्थात्–हिंदुस्थान से ईरान और तुर्कस्थान के मार्ग से होकर यूरोप जाते हुवे जिन जिन देशों का जितने अंश में अनुक्रम से पड़ोस है, उतने उतने ही अंश में उस प्रजा के प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व न्यूनाधिक अंश में मिलते हैं ऐसा एक सामान्य नियम बना सकते हैं।

त्रेतायुग के संध्यांशमें उक्त प्रकार की एकता का अन्त होने पर दूर जा कर बसे हुवे आर्य दूर ही रह गये, एवं द्वापर के आरंभ में केवल ईरान वासी आर्य तथा हिन्दुओं के पूर्वजों के संबन्ध अखण्डित रह गए। द्वापर के बाद कलियुग का आरंभ हुवा और उस समय से हिंदुस्थानी आर्य प्रजा की भाषा तथा कथाओं के स्वतंत्र विकास होने का मंगलाचरण हो गया होगा।

वस्तु विभाग

यूरोप खंडकी पुराण कथाओं में अनुकूलता के लिये दो विभाग कर सकते हैं–(१) पूर्वकालीन या प्राथमिक (२) उत्तरकालीन। इसी प्रकार हिन्दुस्तानकी कथाओं के दो भेद हो सकते हैं। (१) वेदकालीन और (२) पुराण कालीन, इस प्रकार का विभाग करनेसे हम जान सकते हैं कि युरोप की पूर्वकालीन कथायें हमारी वेदकालीन कथाओंके साथ सदृशता रखती हैं। क्योंकि उनका उत्पत्तिस्थान एक ही है। यद्यपि उनका विकास स्वतंत्रतासे हुवा है तो भी उनके बीज—प्राथमिकतत्व एक कोटिकी ही भावना को दर्शाने वाले हैं। एवं शब्दशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करने पर एकही प्रजाकी हम सन्तान हैं यह भी वे बतलाती हैं अब दूसरा वर्ग अर्थात् यूरोप की उत्तरकालीन कथाओं के विषय में कहेंगे, इस वर्ग की कथायें हिन्दुस्तान की पुराण कालीन कथाओं से किसी अंशमें मिलती हैं, क्योंकि इस

उभय प्रकार की कथाओं का विकास देशकाल आदि कारणों से स्वतंत्र रीति से ही हुवा है, तथापि इन दोनों वर्गों की कथाओं की समीक्षा करते हुवे यह बात भी न भूलनी चाहिये कि इन दोनों वर्गों की कथाओं के मूलतत्व प्रथम वर्ग की कथासे मिलते हों तो कुछभी आश्चर्यजनक नहीं, तोभी ग्रीस आदि देशोंकी और हिन्दुस्तान के प्रजा की प्रज्वलन्त कल्पना शक्तिने मूल कथाओं का विस्तार करनेमें जिस प्रकार का स्वरूप धारण किया है उसके परिणाम में दूसरी वर्ग की कथाओं का स्वरूप विविध रूपसे निर्माण होते हुवे, उनके उत्पत्तिस्थान का संबन्ध खंडित होता जा रहा है ऐसा भी प्रतीत होता है। स्वतन्त्र विकास के साथ होता वृद्धिक्षय उन दोनों में दृष्टिगोचर होता है, अतः हम अनुकूलता के लिये दूसरी वर्ग की कथाओं को एक दूसरेसे स्वतंत्र गिनेंगे। यूरोप के द्वितिय वर्ग की कथाओं में जिस तरह मनुष्य और देवों का आपस में मिलाजुला वर्णन किया गया है, उसी तरह हिन्दुस्तान की कथाओं में भी हुवा है। मानवप्रवृत्ति के इतिहास को उन दोनों वर्ग की कथाओं में अनुस्यूत कर दिया है, और जो कुछ भी आश्चर्यकारक घटना संघटित होती या हो चुकी होती उसे भी लोकमात्र के पूजक बुद्धि के प्रताप से पुराण कथाओं में स्थान दे दिया गया है। साधारण मनुष्यकी बुद्धि जिसका पार न पासके ऐसी घटनाओंको जनसमाज के उत्पत्ति कालमें दैवी घटनायें मानली जातीथीं

उसी तरह पुराण कालकी घटनाओं को भी उसी दृष्टिसे देखते थे अर्थात् जहां जहां असाधारणता वहां वहां दिव्यता, ऐसा सिद्धान्त हो जाने पर उक्त दोनों वर्ग की कथाओं में दैवी तथा मानुषी तत्त्वों का संमिश्रण उत्पन्न हुवा दीख पड़ता है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जबतक परीक्षक की विवेचक शक्तिका अवलंबन करके जनसमाजने 'शक्यता' के भेद नहीं किये थे, तबतक कल्पना मृगने छलांगे मारना जारी रक्खा था, एवं जबसे विवेचक बुद्धिका प्रभाव मालूम पडने लगा, तबसे विलासी मनके तरंगोंकी उछल कूद रह गई। आखिर एक समय ऐसा आ गया कि, मानव प्रवृत्ति विविधरंग की हो गई, एवं मनुष्य मात्र के चित्त लौकिक विषयों में अधिक लगने लगे, परिणाम में असाधारण बातें साधारण होती गईं अन्तमें पुराण कथाओं की भावनामय डालिओं पर ओला पड़ते ही उनकी वृद्धि रुक गई। ऐसा शीतकाल तो आया, लेकिन पुराण कथाओं का नितान्त निर्मूलन नहीं हुवा उन्होंने अपनी सन्तति उत्पन्न कर उसके द्वारा अपनी हस्ती कायम रक्खी, जनसमाजकी भावनामय जीवनकला का पोषण के विना गुजारा नथा, उसीसे 'कहानियों या वार्ताओं का जन्म हुवा, यूरोप तथा हिंदुस्तान की उक्त उभय कोटिकी कथाओं के खण्डोंसे अनेक वार्ताओं का जन्म हुआ और उन कथाओं की जननी एकही गोत्रकी होनेसे उन दोनों भूभागों की बातों के बीचमें बहुत से अंशों में सादृश मिल गया। एकही बीजसे उत्पन्न

सदृश क्यों न हो? एकही प्रकार के बीज भिन्न भिन्न गुण धारण करने वाली भूमिमें भिन्न भिन्न प्रकारकी शक्ति धारण करने वाले किसानों के हाथसे बोये जाने वाली सदृशता के साथ गुण भेद धारण करने वाले फल उत्पन्न करें तो कौनसा बडा आश्चर्य है।

यूरोपकी पूर्व कालीन तथा वेद कालीन कथायें

पहिले हम त्रेतायुग में एकत्र होकर रहने वाले आर्यकुल में वर्तमान कथाओं का निरीक्षण करेंगे, ईरान निवासी तथा हिन्दभूमि के आर्यों की कथाओं की तुलना हम पश्चात् करेंगे। जब अन्तिम ईरान निवासियों की आर्यों से जुदाई हुई उस से पहिले स्लाव, ग्रीस, इटली आदि देशों में जा कर आर्य बस गये थे ऐसा हमारा कथन है, एवं त्रेतायुग में जब आर्य प्रजा अखण्डित थी तब उनकी धर्म भावनायें और सृष्टि विषयक कल्पनायें एक कोटि की ही होंगी, कालांतर और स्थानांतर के भेद को छोड़ कर हमारी ऐसी मान्यता है। अतः ग्रीस, इटली आदि प्रदेशों के आर्यों की पूर्व कालीन कथाओं को हम हिन्दुस्थान की वैदिक कथाओं के साथ तुलना कर सकते हैं। जन समाज के उत्पत्तिकाल में सृष्टि रचना विषयक कोई भी शास्त्रीय पद्धति के विचार होंगे ऐसा कहा नहीं जा सकता इसे इसी से आकाश के आश्रय के नीचे रहने वाली पृथ्वी से पोषित हुई आर्य प्रजाकी तरफ से आकाश को (द्यौष्) नाम देकर उसको रक्षण करने वाला 'द्यौष्पितर्'—तेजोमय पिता

एवं पृथ्वी को पोषण करनेवाली माता, ऐसे नाम रख दिए थे। किन्तु द्यौष्पितर् वा पृथ्वी को आदि काल में देव या देवी नहीं माना गया था। विश्व के दो सब से बड़े दृष्टिगोचर विभागों को पहिचानने के लिये उन का नाम एवं गुणों की कल्पना उन के विषय में की गई थी, यह द्यौष् शब्द ग्रीक भाषा में झ्युस्, लेटिन में ज्यु ट्युटानिक में टियु वा झियुसनी के साथ शब्द शास्त्र की दृष्टि से रूपार्थ में साम्य रखता है। इस से इस शब्द का उपयोग करने वाली प्रजा किसी समय एक थी ऐसा अनुमान निकलता है। ग्रीसादि यूरोप खण्डान्तर्गत देशों में पीछे से द्यौष्पितर् शब्द का मूल अर्थ संकुचित हो गया, एवं वह शब्द किसी एक देव का नाम होगा ऐसी कल्पना भी करली गई, सुतरां उच्चारण भेद के कारण उसका ग्रीक भाषा में ' झ्युसपिटर ' लैटिन में ज्युपिटर रूप हो गया। ज़न्दा वस्था में यह नाम नहीं मिलता लेकिन वेद आदि हिन्दु ग्रन्थों में भी इस नाम का कोई देव नहीं मिलता। दक्षिण यूरोप में रहने वाले आर्य एशियाखण्ड के आर्यों से जब अलग हुवे तब से उस शब्द का संकुचित अर्थ वे लोग करने लगे ऐसा अनुमान से हो सकता है। उत्तर ध्रुव की आर्य प्रजाने सत्य युग में ' द्यौष् ' शब्द तेजस्वी के अर्थ में उपयुक्त कर ' द्यावापृथिव्यौ ' आकाश तथा पृथ्वी ऐसे दो मुख्य विश्व विभाग की कल्पना की होगी। पश्चात् त्रेतायुग में अर्थात् आर्य प्रजा अपना उत्तर का निवास स्थान छोड़ कर वायव्यकोन की ओर रशिया की तरफ चलकर

जब स्थिर हो गई तब उन के विचार अधिक विकास को प्राप्त कर देव सृष्टि की कल्पना करने लगे थे एवं सृष्टि के दृश्यों की दिव्यता को देव तक मानलिया गया था, इस तरह से देव सृष्टि की हस्ती कायम हुई। आदिति हिरण्य गर्भ, विश्वकर्मा, त्वष्टा, प्रजापति, अग्नि, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, सूर्य, पूषा, आश्विनौ, यम, रुद्र, मरुत्, वायु, पर्जन्य, उषा, वास्तोष्पति, क्षेत्रपति सोम, वगैरह देवों की आरंभ में कल्पना की गई। तत्पश्चात् देवसृष्टि के विषयमें जैसे जैसे विचार वल्लरी पुष्ट होती गई उस तरह उसकी घटनामें नवीन देवों के वंशानुक्रम के पालन करने के लिए कल्पित कर किये गये, ऐसा संभव है। इस तरह अन्तमें त्रेतायुग की आर्य प्रजा को दश प्रजापति गिनकर मरीची, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद की कल्पना की गई, और उन दस महर्षियों को आर्य प्रजा के मूल पूर्वज कहा गया। कश्यप कुल जो कि आजकल कास्पियन समुद्र के आसपास रहता था, उसका पिता मरीची माना गया, क्रतु को भी एक कुल का पूर्वज स्वीकार किया, क्रतु के कुल के पीछे से दक्षिण के यूरोपान्तर्गत प्रदेशों में रहते हुवे, उन सबने क्रतु को अपना आदि पुरुष गिनकर उससे उत्पन्न हुई देवसृष्टि की रचना मान ली, वैदिक शब्द 'क्रतु' ग्रीस भाषा का 'क्रेटास' व झन्द भाषा का खतु शब्द के साथ साम्य रखता है। एवं क्रतु कुल के आर्य एक समय मध्य

इशिया के आर्यों के सहवासमें से ऐसा अनुमान निकलता है; ग्रीक प्रजाने ऋतु को आदि पुरुष तो माना लेकिन जब तक उस के अर्धांगना न हो तब तक वह प्रजोत्पत्ति कैसे कर सके; तब उन्होंने 'रहीयाने' को उसकी पत्नी बनाई, उससे वेस्टा, सीरीस, व जुनो, नामक तीन पुत्रियां तथा प्लुटो, नेपच्यून व ज्युपिटर, नामक तीन पुत्रों की उत्पत्ति बतलाई। हिन्दु शास्त्रों के अनुसार ऋतु की सन्तति नामक स्त्री थी, त्रेतायुग के आरंभ में ऋतु कुल के आर्य भिन्न तो पड़ गये, किन्तु अपने मूल पूर्वजों के विचारोंको न छोड़ सके, अतः कालान्तर में ऋतु कुल के ग्रीस निवासी आर्यों ने 'द्यौष्पितर' को ही देवता बनाकर अपने पूर्वज ऋतु का उस को पुत्र बना दिया है। अति प्राचीन काल में सब बातें स्मृति में रक्खी जातीं थीं, जिस से कालान्तर में पिता पुत्र के स्थान में एवं पुत्र पिता के स्थान में भूल से समझ लिया जाना बहुत संभव है। अतः इस विषय में तुलनात्मक दृष्टि से निश्चयात्मक कुछ भी कहना असंभावित हो जाता है। उक्त प्रकार का उल्लेख हिन्दू, ईरानी व ग्रीक आदि प्रजा की एकता बताने के लिये किया गया है। यद्यपि विषयान्तर जैसा हो गया है तो भी क्षन्तव्य है। अब हम मुख्य मुख्य देवों की तुलना कर के अपने विषय का अधिक स्फोटन करेंगे।

१ विश्वोत्पत्ति वेद में विश्वोत्पत्ति के विषय में स्पष्ट विकास क्रम कुछ भी नहीं बताया है, तथापि सृष्टि के सुन्दर

दृश्यों को वेदकाल में ' देव ' मान लिया गया था, ऐसा उक्त विवेचन से मालूम होता है। द्यावापृथिवी, वरुण, सूर्य, उषा, इत्यादि वैदिक देव देवियां जड़ पदार्थ अथवा दृश्यों के नाम मात्र थे, किन्तु उनमें भिन्न शक्ति दीख पड़ती थी, इसी लिए उन को स्वतंत्र देव या देवी मान लिया गया था। सब मिल के तेतीस देवता माने गये थे, कवि कल्पनाने उनका संबन्ध भिन्न भिन्न रूप में बतलाया है। उस के परिणाम में पुत्री व वहु का भेद भी नहीं माना। अस्थिर अवस्था में एवं परिपक्व विचार शक्ति से होने वाली व्यवस्था के अभाव में वास्तविक देवसृष्टि का विकासक्रम सुनिश्चित नहीं किया जा सकता, ग्रीस निवासी जिस प्रकार का उत्पत्तिक्रम बतलाते हैं, वह मूल आर्य प्रजा का अर्थात् उत्तर देशीय आर्यों से नहीं माना गया है। परन्तु त्रेतायुगमें आर्य प्रजा द्वारा ग्रथित देवसृष्टि के उत्पत्तिक्रम से कितने ही अंशों में मिलता है। आरंभ काल के वेद विषयमें द्योः=पिता तथा पृथिवी को माता इस अनुक्रम से देवताओं को मातृपितृ स्वरूप माना गया है। इन प्राचीन हिन्दुओं के विचार से ग्रीक तथा रोमन लोग भी संमत हैं, " उस प्रारंभिक काल में अभाव और भाव दोनों न थे, आकाश और वाय भी नथे, कहां व किस स्थान पर वह था ! सब के आसपास क्या था ? जल था, अगाध व अतुलनीय अवकाश ।, उस समय मरण नहीं था, एवं कोई अमर भी नहीं था, दिन रात का भेद भी नथा, वह (ब्रह्म) खुद स्वाश्रयी हो कर

शांतता से काल व्यतीत करता था, उससे भिन्न अथवा श्रेष्ठ कोई नथा। प्रारंभ में अन्धकार से व्याप्त तम था। यह परीक्षा न हो सके वैसा जल था, वह अभाव से व्याप्त था, प्रवृत्ति-हीन था, उत्साह शक्ति से उसकी वृद्धि होती थी। किसी को ज्ञान नहीं, व कोई भी यह नहीं कह सकता कि जगत् कहां से उत्पन्न हुवा है। इस जगत् का कार्य व्यवस्थित होने पर देवता पैदा हुवे, तब यह जगत् कहांसे उत्पन्न हुवा ऐसा कोई कह सकता है क्या? यह जगत् कहांसे उत्पन्न हुवा। और किसीने यह उत्पन्न किया हैकि नहीं, यह बात सबका नियन्ता जो ऊंचे आकाशमें है सचमुच वह जानता है वा वहभी नहीं जानता।"

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १२१ वें सूक्तमें लिखा है तदनुसार "आदि में हीं स्वर्णमयप्रकाश का मूल उत्पन्न हुवा, प्रत्येक अस्तित्वरूप वस्तु का वह प्रभुरूप से पैदा हुवा था उसने पृथ्वी और आकाश की स्थापना की × × × × बर्फसे आच्छादित पर्वत, समुद्र तथा सुदूरवर्तिनी नदियां उसकी सत्ता स्वीकार करती हैं उसीसे आकाश प्रकाशित है व पृथ्वी दृढ है, उसने स्वर्गतो क्या, परन्तु उससे भी उत्कृष्ट लोकान्तरों को उत्पन्न किया है, उसने हवाको प्रकाश दिया है। उसकी इच्छानुसार दृढ रहने वाले भी अंदरसे डरते हुवे आकाश व पृथ्वी पर वह नजर रखता है × × × × जो अपनी शक्तिसे यज्ञकी अग्निके सुलगाने वाला व बलदेने वाला तथा बादलोंका नियन्ता

है वह! सब देवों का मुखिया है, पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला, आकाश को उत्पन्न करनेवाला, वह अपना नाश न करे" ग्रीक कवि होमर तथा हीसिऑड सृष्टयुत्पत्तिका जैसा वर्णन करते हैं, वह उक्तवैदिक वर्णन सेन्यूनाधिक अंशमें मिलते हैं। वैदिक जो 'स्वर्णमय प्रकाशका मूल' उसका हिरण्यगर्भ नाम होनेपर उसीको 'द्यौष्पितर' तेजस्वी पिता ऐसा नाम रखदिया उसीको पश्चात् ब्रह्म वा साकार ब्रह्म के नामसे पुकारा। विश्वोत्पत्ति संबन्धिनी ग्रीस देशीय कथाके अनुसार अण्डे के मध्यभाग से प्रेम (एरॉस) तथा अन्य अद्भुत वस्तुएं उत्पन्न हुई। एवं वैदिक विश्वोत्पत्ति वर्णन का आलोचन करते समय भी यही मालूम होता है की "प्रारम्भमें स्वर्णमय प्रकाशक मूल उत्पन्न हुवा, प्रत्येक अस्तित्व वान् वस्तुका वह प्रथमसे ही स्वामी था" हिन्दु मत के अनुसार मूल वह सहस्रांशुसमप्रभायुक्त अण्ड के दो टुकड़े हुवे, उपरी टुकड़े से आकाश व निचले टुकड़े से पृथ्वी उत्पन्न हुई। ग्रीस देशीय किन्तु ऑर्फीस के नाम से सुप्रसिद्ध विश्वोत्पत्ति वाद भी इसी प्रकार का वर्णन करता है एवंउसी वाद के अनुसार अण्ड के मध्यभाग से (प्रेम) एरॉस उत्पन्न हुवा, इसी तरह हिंदु शास्त्र भी ब्रह्मा के हृदय से काम को स्त्रीरूप से उत्पन्न हुवा कहते हैं। कामदेव का नाम 'इराजः' है क्योंकि इरा से उत्पन्न इं=काम=राति=काम को जो देता है वह इरा वैदिक दृष्टिसे इसका अर्थ रति, विलास, वैभव, आदि होता है, इससे यह कल्पना होती है कि ग्रीक शब्द एरॉस

वैदिक इरा शब्द से बना है. इस प्रकार का सादृश्य होने से ग्रीस तथा हिन्दु आर्यो की विश्वोत्पत्ति की कथाका मूल एक ही सिद्ध किया जासकता है। द्यौष्पितर यही ग्रीस वासियों का ' झ्युस ' व हिन्दुओं का ' हिरण्यगर्भ ' किंवा ब्रह्म है, एवं उससे एरॉस वा इराज—कामकी उत्पात्ति की कल्पना की गई है। अब हम मुख्य मुख्य वैदिक देवों तथा देवियों की तुलनात्मक दृष्टिसे गुण दोष की कथा कहेंगे।

२ द्यौष्पितर—इस वैदिक शब्द का अर्थ तेजस्वी पिता के सिवाय कुछ नहीं होता है। यह किसी विशेष देवता का नाम नहीं है, किन्तु जनसमाज के आरम्भकालिक सृष्टिके उत्पादक अव्यक्त पिता के लिये कहा जाताथा, फिर उसका अर्थ हिरण्यगर्भ वा सूर्य ऐसा होकर हिंदुशास्त्र की दृष्टिसे पुराण कालमें इसका व्यवहार ही नहीं किया गया, हिन्दु आर्यों से जब तक ग्रीस देशीय आर्य अलग न हुवे थे, तब तक यह शब्द किसी महान् देवता का नाम था, अतएव ग्रीस देशीय आर्यों ने देवों के देव के इस शब्दका व्यवहार किया था, द्युस शब्दका उच्चार ग्रीस के आर्य ' झ्युस ' करने लगे तथा झ्युसपिटर शब्द का उन्होंने प्रयोग किया। वह झ्युसपिटर ही शब्द रोमन या लैटिन प्रजाका ज्युपिटर है, टयु वा टीर रूपसे उस का प्रयोग नौर्स प्रजाने किया है। स्कैन्डिनेवियन प्रजा इस शब्द को केवल देव शब्द के अर्थ में उपयोग करती है। वेदोक्त अर्थ को ही स्केन्डिनेवियन प्रजाने स्वीकार किया है, पीछेसे हिन्दु

लोगोंने जिस द्यौष्पितर को ब्रह्म कहा है उसीके मस्तक से उषा की उत्पत्ति बतलाई है इसी तरह ग्रीस देशीय झ्युस के सिर से एथे वा मिनर्वा की उत्पत्ति हुई है। कवि हीसि ऑड एथेनी को ट्रिटो वा ट्रिटॉस की पुत्री बतलाता है। ट्रिटो शब्द वैदिक शब्द त्रित जो कि जल व वायु के स्वामी के लिये कहा गया है मिलता है। एवं त्रयीतनु शब्द का संस्कृत में अर्थ सूर्य होता है, अर्थात् एथेनी जिस का नाम ट्रिटोजेनिया है वह कदाचित् त्रयीतनु की पुत्री हो, तब सूर्य को तेजस्वी पिता ' द्यौष्पितर ' रूप कहने में टिट्रोजेनिया वा एथेनी को द्यौष्पितर की पुत्री कहने में किसी तरह की भी रुकावट नहीं है, और भी त्रयी शब्द का अर्थ संस्कृत में बुद्धि वा प्रज्ञा होता है, और एथनी यह बुद्धि की देवी है, इससे वैदिक शब्द त्रित किंवा ग्रीक शब्द ट्रिटो इन दोनोंके अर्थ प्राचीनकाल में एकही थे यह कह सकते हैं। एक ही देवको सृष्टि के प्रत्येक तत्वों का वा एक तत्व का अधिष्ठाता माना जाता था यह नाम ध्यानमें रखने से पूर्वोक्त सब विरोधाभास मिट जाते हैं। वास्तवमें वैदिक द्यौष्पितर ये ग्रीस देशीय झ्युस वा ज्युपिटर रूपसे हिंदु पुराण कथाओं में नहीं मिलता, लेकिन ब्रह्मा वा इन्द्ररूप अपना अस्तित्व प्रगट किया है, जब हम ब्रह्म वा इन्द्र के विषय में कहेंगे तो ग्रीस का झ्युस व लेटिन के ज्युपिटर के कर्मों की तुलना यथार्थ रीति से कर सकेंगे। ग्रीस देशकी देव सृष्टि में इन्द्रका नामोनिशान भी नहीं है। इरानियों का जिस प्रकार इन्द्र

शब्द अस्वीकार्य था उसी तरह ग्रीशियनों को भी था ऐसा कह सकते हैं।

२ वरुण—यह शब्द वृ धातु से बना है, ढकनेवाला ऐसा इस का शब्दार्थ है, पृथ्वीपर आकाश छत्र रूप है इस लिये उस छत्र या ढकने को वरुण शब्द से पहिचानने लगे। परिणाम में उसको आश्रय देने वाला समझकर देव रूपमें उसकी स्तुति भी होने लगी, इस वरुण का पर्याय शब्द सूर्य भी है, एवं 'द्यौष्पितर' का अर्थ तेजस्वी पिता होने के कारण वरुण, सूर्य और द्यौष्पितर ये तीनों एक ही भावना को प्रकट करने वाले हैं। एक ही वस्तु को अनेक नामों से पहिचानने की रीति से आर्य प्रजा से आरंभ काल में अनिर्धारित देव परंपरा उत्तर काल में हो गई है। संस्कृत में जिसको 'वरुण' कहते हैं उसी को ग्रीक में 'आउरेनोस' तथा लेटिन में 'यूरेनस' कहते हैं। वेदोक्त वरुण अदिति का पुत्र था, और उसकी प्रभुता सर्व व्यापक थी, जिस प्रकार 'द्यौष्पितर' की पत्नी पृथ्वी थी, इसी प्रकार वरुण की भी पत्नी होनी चाहिये। ग्रीस देशीय कथानक के अनुसार 'आउरेनोस' की पत्नी का नाम 'गीया' वा 'जीया' था, इन दोनों शब्द का अर्थ पृथ्वी होता है। तब एकेश्वरवाद की दृष्टि से वरुण की पत्नी पृथ्वी ही होनी चाहिये। संस्कृत भाषा में 'ज्या' शब्द का अर्थ पृथ्वी है। उसी ज्या शब्द के अपभ्रंश गीया वा जीया हैं, इतना सिद्ध होने पर देवों के

वंशावतार के विषय में हिंदुस्थान तथा ग्रीस आदि देशों के आर्यों के विचारों की एकता सिद्ध हो जाती है, 'अदिति' का दूसरा पुत्र 'मित्र' है, एवं वह वेद में प्रायः वरुण के साथ जुड़ा हुवा ही आता है; मानों दोनों का अर्थ एक ही हो, दोनों का अर्थ सूर्य है व दोनों पर्यायवाचक मालूम पड़ते हैं, किसी प्रसंग पर 'मित्रावरुणौ' दृश्य माने जाते हैं, ऐसा भी ज्ञात होता है कि ये दोनों देवता घोड़ा जुड़े हुये रथ में बैठ कर उच्च प्रदेशों में चढ़ते हैं। पृथ्वी तथा आकाश की सब बातों को जान सकते हैं, यह सब वर्णन सूर्य से मिलता है। वैदिक वरुण आउरेनोस तथा यूरेनस के गुणों को भी धारण करता है। वरुण विश्व का राजा है, उसके बलसे संपूर्ण जगत् टिक रहा है, तीनों लोक उसी में हैं, पवन उसका श्वास है, सूर्य को आकाश में वही स्थिर करने वाला है, अपने विचरने का मार्ग भी उसी ने निर्दिष्ट किया है, आकाश में उड़ते पक्षी, व अविरत त्वरा से प्रवाहित होने वाली नदियां उस की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकतीं। इस वरुण की रचना ऐसी है कि, नदी मात्र का पांनी समुद्र में वहता है, तो भी नहीं छलकता, वह ठाठमाठका पोषाक पहनता है, वह अपने जासूसों से (स्पश) घिरा हुवा है, "जो कोई प्राणी खुद आकाश में मार्ग बनाना चाहता है वह वरुण राजा के पाशों से बच नहीं सकता, × × × वह सम्पूर्ण सृष्टि पर 'सूर्य की तरेह' भ्रमण कर सकता है। एवं वह

अपने सर्व दर्शी सहस्र नेत्रों से देख सकता है। × ×
फांसे डालने वाला जिस तरह अपने फांसे को हाथ में
खिला सकता है, उसी तरह यह वरुण अपने सर्वमय शरीर
को सहज धारण कर सकता है। एवं यह वरुण प्राणीमात्र के
पापाचरण का हिसाब रखनेवाला है। इसी लिये वेद कालीन
जनसमाजने उसको उद्देश रख अनेक स्तवन कर अपने पापों का
प्रायाश्चित्त भी किया है। यह अधो लिखित उक्ति से ज्ञात होगा।

" हे वरुण, अभि तू मुझको मट्टी के घर में क्या नहीं
प्रवेश करावेगा, हे सर्व शक्तिमन्, दया कर।" वायुवेग
से प्रवाहित वद्ली के माफक जो मैं कांपता हुवा चलूं
तो हे सर्व शक्तिमन् तु मेरे पर दया करना, " बलहीन
होने से हे समर्थ और तेजस्वी देव मैं उलटे रास्ते पर
गया हूं हे सर्व शक्तिमन् दया कर, " " स्वर्ग के यजमान के
सामने जब जब हम हे वरुण अपराध करते हैं, जब जब
अविचार से हम तेरे नियमोंका उलंघन करें, तब तब तूं दया
करना " वेद में ' दुहितर्दिव ' उषा को बरुण की बहन कहा है
अतः वरुण को द्यौष्पितर का पुत्र भी मान सकते हैं। इस प्रकार
वेदकाल में वरुण जो एक सर्व व्यापक सर्वेश्वररूप था, उसको
उत्तरकालीन पौराणिक कथाओं में केवल जल का अधिष्ठाता
बना दिया है, लैटिन आदि भाषाओं मे नेप्चुन नाम से
परिचित देवता के लक्षणयुक्त उसको बना दिया है इतनी बात ध्यान
में रख कर विश्व पिता वरुण के विषय में ज्यादह न कहेंगे।

४ इन्द्र—इस शब्द का धातु इंद् है, समर्थ होना यह अर्थ है, यह देवता स्वर्ग का सर्वोपरि एवं वैदिक देवताओं में अग्रगण्य है, वेदकाल में द्यौष्पितर शब्द के होने पर, इस के स्थान में इन्द्र की स्थापना हुई थी, ग्रीक ज्युपिटर की पात्रता आर्यों के वैदिक इन्द्र को प्राप्त हुई। वह स्वच्छ आकाशका सुन्दर देवता है उस के केश कुछ लाली लिये व सोने के रंग के हैं चाहे जैसा रूप धारण कर सकता है। दो घोड़ों से खींचे जाने वाले सुवर्ण के रथ में बैठ कर वह चलता है, वज्र नामक हथियार को वह धारण करता है, और उसी से वह अन्धकार-वृत्र आदि शत्रुओं का संहार करता है, वह अहि वृत्र शंबर आदि शत्रुओं को मार कर उन के किलों को जीत लेता है, एवं बादलों में स्थित जल को छिन्न भिन्न कर अपने भक्तों को देता है, इस प्रकार वह वृष्टि का देव है, मरुत उस के सहायक योधा हैं, सोमरस उस को बहुत सुहाता है, सोमरस का पान कर मस्त हो कर अपने शत्रुओं का नाश करता है, वह अपने भक्तों का मित्र है बन्धु है, पिता है। वह निर्बल को सहायता करनेवाला व अपने नौकरों को सुख देनेहारा है, जो उस को सोमपान कराते हैं उन को सब प्रकार के वैभव गौ घोड़ा इत्यादि देता है। वह इतना बड़ा है कि पृथ्वी तथा आकाश उस के कमरबन्ध के लिये भी काफी नहीं, नीचे पड़ी हुई पृथ्वी को वह आकाश से देखता है, वह प्रज्ञावान है। दहना वा उषा के पीछे लग कर वह इन सुन्द-

रियों के रथ को तोड़ डालता है। किसी समय इन्द्र को दहना का पति पुत्र तथा पिता रूप से भी वर्णन करते हैं। इस से समझ सकते हैं कि वैदिक इन्द्र सूर्यका ही नाम है। सूर्य जिस प्रकार अन्धकार का नाश करता है उसी तरह इन्द्र भी कर सकता है। इन्द्रके लाल बाल वा सुवर्णमय किरणें सूर्य का रश्मि हैं इन्द्र की स्त्री का नाम इन्द्राणी है। ग्रीस देश के आर्यों ने झ्युस के विषय में जो जो कल्पनायें की हैं वे हिंदुस्थान की इन्द्र की कल्पनाओं से मिलती हैं। इन्द्र के समान झ्युसभी शब्द करने वाले रथ में बैठता है, एवं वज्र धारण करता है, उस से वह अपने शत्रुओं का नाश करता है, झ्युस वा ज्युपिटर की स्त्री का नाम 'जुनो' वा 'हीरा' है लेकिन जुनो के गुण इन्द्राणी में नहीं दीख पड़ते। एवं वैदिक इन्द्र की पात्रता पौराणिक इन्द्र से भिन्न है, पौराणिक इन्द्र के विषय में पीछे से कहेंगे।

५ अग्नि—यह देवता वेद में बहुत प्रसिद्ध है, लैटिन प्रजा में 'इग्निस' स्लाव में 'ऑग्नि'। यह देव अमर है परन्तु मनुष्य के पास अतिथि रूपसे रहे वह 'होता' तथा जो देवों के पास ले जाती है वह वह्नि। यज्ञमें भाग लेने वाले मनुष्य तथा देवताओं का वह मुख तथा जीभ है। वह मनुष्यमात्र का पति, मित्र तथा पितृ रूप से वर्णित है-दिवस् से उसका जन्म हुवा है। दो पत्थरों के घिसने से उस की उत्पत्ति हुई है। उषाने उसको पैदा किया है। एवं इन्द्र और विष्णु इन दोनों ने साथ मिलकर उसको

उत्पन्न किया था, ऐसे चार मत वेद में इसकी उत्पत्ति के विषय में मिलते हैं। वेदमें इसके तीन स्वरूपों के विषय में भी कहीं कहीं उल्लेख है, आकाश में वह सूर्य रूप से, हवा में विद्युत रूप से व पृथ्वी पर वह अग्नि रूप से दीख पड़ती है, उस के चार सींग तीन पैर दो सिर और सात हाथ हैं ऐसा भी एक स्थान पर लिखा है। दोनों लोकों का उत्पादक है। आकाश को स्थिर करने वाला, मित्र का जनयिता सूर्य को आकाश में आरोहण करवाने वाला है। पृथ्वी आकाश तथा सब भूत उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। वह सर्व द्रष्टा है। उस के भक्त दीर्घायुषी तथा वैभव युक्त होते हैं। वह अमरत्व तथा सब प्रकार के वर देने वाला है। इन्द्र और अग्नि युग्म जाता हैं। अन्धकार में डूबे हुवे पृथ्वी तथा आकाश अग्नि से ही अलोकमय होते हैं। वह सब का भक्षण करने वाला तथा गर्जनात्मक शब्द करने वाला है। उसको वेद में होता पुरोहित ऋषि कवि आदि विशेषण लगाये गये है। यह देवताओं को यज्ञ में बुलाने वाला दूत है। अग्नि इन्द्र के साथ रह कर बड़े बड़े पराक्रम करता है, इन्द्र के साथ अग्नि भी वैश्वानर है, अहि तथा वृत्र को मारने वाला है, इन्द्र मित्र वरुण ये सब अग्नि के नाम हैं, यम व मातरिश्विन् भी वही है, ग्रीस देशीय प्रामिथीयस संबन्धिनी एक कथा मातरिश्विन् के एक कार्य से साम्य रखती है, प्रामिथीयसने जिस प्रकार स्वर्ग से पृथ्वीपर अग्नि को उतारा था, उसी

प्रकार वैदिक कथा के अनुसार मातरिश्वन् ने भी वही कार्य किया है, इस स्थानपर निःसंकोच यह भी हम कह सकते हैं कि वैदिक देवता अग्निका समान धर्मी व समानार्थ सूचक कोईभी देव ग्रीक लैटिन वा स्लाव भाषा बोलने वाली प्रजामें नथा, एवं स्लाव भाषा में अग्नि केवल शब्द मात्र ही रह गया था, इससे यह अनुमान निकाल सकते है कि आर्य प्रजा के आकाश वासी मूक देवों को छोडकर उनके साथ पृथ्वी का अधिक संबन्ध रखने वाले अग्नि इन्द्र आदि देवताओं की स्थापना होने लगी होगी, तब स्लाव लैटिन आदि प्रजाके आर्य पूर्वज मध्य एशिया के आर्य बन्धुओं से अलहदा हुवे होंगे। अग्नि के कुल विषयक विशेष बात आगे कहेंगे।

६ सूर्य—आकाश में सरके वह सूर्य, किंवा दुनिया को कर्म करने के लिए जो प्रेरणा करे वह इस शब्द का धात्त्वर्थ है। सूर्य शब्द ग्रीक भाषा के हेलिऑस तथा लेटिन भाषा के सोल के साथ साम्य रखता है। ग्रीस देशीय पुराण कथाओं का हेलिऑस एवं हीमडाल के समान वैदिक सूर्य सब वस्तुओं का अवलोकन तथा श्रवण कर सकता है, एवं मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा भी है। वेद में सावित्र तथा मित्र शब्द से सूर्य का ही ग्रहण किया जाता है। इन्द्र और अग्नि के समान यद्यपि वह स्वतन्त्र है तो भी उस के पिता और माता हैं। यद्यपि वह अपने ही तेज से प्रकाशित है तो भी इन्द्र और सोम से उस को प्रभा की प्राप्ति हुई है। वह उषा

का पति है। ओइडीपस की न्याई आइओकॅस्टी उस की माता व पत्नी हैं। इस तरह यहां भी उषा उस की माता भी है, सात अश्व उस के रथ से जुड़े हुवे हैं, वे अपने आप रथसे जुड़ जाते हैं। वे संपूर्ण आकाश को नाप लेते हैं। व अपने सुवर्णमय करोंसे प्राणि मात्र में उत्साह का संचार करते हैं। वह द्यौष् तथा अदिति का पुत्र हैं। इक्सिऑन टॅन्टेलॉस साइसीफ़ोस की न्याईं वह धनागार का स्वामी है, किसी समय वह अश्वरहित एवं आधार हीन हो जाता है, वह मित्र अरुण तथा अग्नि का चक्षुरूप गिना जाता है। घोड़े वा किसी आधार के बिना भी वह ऊपर ऊपर चढ़ता जाता है। जब उसकी वैसी नित्य प्रवृत्ति बन्द हो जाती है, तब वह एन्डीमियान वा केफॅलस की माफक जल में जा पड़ता है। सूर्य को वेदमें विष्णु रूपसे वर्णन किया है। इसी नाम से वह अपने तीन पैर से अपने प्रयाण मार्ग को नाप लेता है, विष्णु नामक सूर्य की यह कथा पौराणिक कालमें बलि और वामन रूपसे सुप्रसिद्ध हो गई है। सूर्य का शक्ति नामसे परिचय देते हुवे उसके चक्षु जीभ तथा हाथ सुवर्ण के हैं ऐसा मान लिया गया था। एक यज्ञ में सावता का एक हाथ कट जाने पर पुरोहितोंने उसको सोने का हाथ बना दिया था, यूरोपीय कथाओंमें मिडास की कथा सविता के उक्त स्वरूपसे साम्य रखती है वह देव ऐसा है कि इन्द्र और वरुण भी उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं चल सकते, ' उसा की गोदसे स्तुति गायकों से

प्रशंसित वह सम्भ खडा हो जाता है ’। वह आकाश की कान्तिरूप दूरदर्शी दूर तक प्रकाश देने वाला द्युतिमान् परि-भ्रमण करने.वाले के सामने आ खड़ा होता है। सचमुच उस सूर्यसे प्राण वाला बनकर मनुष्य अपने अपने कार्य में लग जाता है और पूरा कर डालता है, सूर्य जैसे विष्णु है उसी प्रकार अग्नि इन्द्र मित्र वरुण रूप भी है। वेदमें इस प्रकार एकही नाम होकर उस समय की आर्य प्रजामें एकेश्वरवाद था यह अच्छी तरह कहा जा सकता है। उत्तर कालीन पौराणिक कथाओंमें सूर्य विष्णु रूपसे विशेष दीख पड़ता है, विष्णु के विषय में लिखते समय तद्द्वारा सूर्यकी पात्रता का आगे हम अधिक वर्णन करेंगे। इस सूर्य के सूर्या नाम की स्त्री थी तथा यम नाम का पुत्र और यमी नाम की पुत्री थी।

७-- सोम ऋग्वेद का नववां मण्डल सोम की स्तुतिओं से भरा हुवा है। सोम रसमें वर्तमान मादक शक्तिसे आर्य लोगों को आश्चर्य उत्पन्न होने पर वे लोग उसे देवता मानने लगे, यह सोम यूरोपीय डायोनीसस वा बेकस के साथ कुछकुछ साम्य रखता है, बेकस की न्याई सोमको सृष्टि मात्रका देव माना गया है, वह देव तथा मनुष्यों की शारीरिक व मानसिक शक्तियों को प्रदीप्त करने वाला माना जाता है अग्नि सूर्य इन्द्र व विष्णु का वह जनक है। उस की सहायतासे इन्द्र वृत्रादि शत्रुओं को हरा सकता है, सोम को भी इन्द्र कहा गया है। उत्तरकालीन पुराण कथाओंमें चन्द्र रूपसे माना गया है।

८ उषस्—दुहितार्दिव उषस् द्यौष् की पुत्री, भग, वरुण तथा निशा की बहन एवं सूर्य की प्राणवल्लभा है। वह विश्वसुविदः अर्थात् अश्व धन गौ आदि देने वाली देवी है। वह सूनृतावरी भी है उसको देखकर सृष्टि मात्र उत्साही बनती है, वह नित्य यौवन धारण करने वाली है। वह वाजिनीवती अर्थात् अन्न को लाने वाली है। एवं दिन प्रतिदिन घटाने वाली है, उषस् प्रभात की देवी है, वह ग्रीक भाषामें ईयॉस लेटिन में 'ऑरोरा' व झन्द भाषा में उषा के नामसे परिचित है। मिनर्वा किंवा एथेनी का जन्म जिस प्रकार झ्युस के मस्तक से हुवा था, उसी प्रकार उषस् वा अहना का जन्म भी द्यौष् के मस्तक से हुवा था। अहना द्योतना किंवा दहना नाम से भी उसे वेद में पुकारते हैं। दहना का ग्रीक भाषा में 'डेफनी' अक्षरशः अर्थ होता है। डेफनी एपॉलो (सूर्य देव) की प्राणवल्लभा है, एवं वैदिक उषस् भी सूर्य की योषा है। इस से उषस् अहना दहना एथेनी डेफनी इत्यादि संस्कृत वा ग्रीक भाषा के शब्द एक दृश्य कोही सूचित करनेवाले हैं, ग्रीसदेशीय एथेनी की तरह वह पवित्र एवं अकलंकित है, सत्य तथा प्रज्ञाकी देवी है। "वह एक नवयौवना योषा की न्याईं हम पर प्रकाश करती है एवं वह प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्म करने की प्रेरणा करने वाली है। मनुष्य को अग्नि प्रकट करने की आवश्यकता पड़ी थी, तिमिर का नाश कर उसने प्रकाश दिया था।" उसका प्रकाश विशाल है, उस को पीछे से उर्वशी भी कहा गया था, उसके

उस स्वरूप में युरीफेसा, युरीडीकी, युरीजेनिया, युरीनोमी, तथा युरोपी की पात्रता को मिलती है। वह गौवों की माता है, और दिशाओं में स्थित पदार्थों को वह प्रगट कर देती है। वह तिमिरतत्त्व को सुला देती है। उष.के पीछे पड़कर सूर्यने उसको मार डाला था किंवा उस सूर्यवल्लभा का अपने पति की गोदी में मरण हुवा था, इससे हम सहज अनुमान कर सकते हैं कि दहना, डेफनी एवं प्रोक्रिस संबंधी पाश्चात्य कथाओं की उत्पत्तिका बीज उक्त कथाही होगी। इन्द्रने उषस् का रथ तोड़ डाला ऐसा वेद में लिखा है, इस से इन्द्र यही सूर्य था यह अनुमान कर सकते हैं, उषा संबन्धी वैदिक कथाओंसे तो पुराणों में पुरूरवस व उर्वशी संबन्धी कथायें उत्पन्न हो गई हैं, इसके अतिरिक्त ओखा अनिरुद्धकी रति-क्रीडा संबंधी कथाएं भी उत्पन्न हुई। इस विषयमें हम फिर कहेंगे, पौराणिक ब्रह्मा तथा सरस्वती द्यौष् तथा उषा के शब्दान्तर ही हैं।

९ यमः—यह देवता विवस्वान् सूर्य का पुत्र है, इसको प्राणोंका नियन्ता गिना जाता है। उसकी बहिन जो कि उसकी प्रियतमा थी उसका नाम यमी है। उसको पितरों का देव माना गया है। वह यम तथा यमी आद्य स्त्रीपुरुषका जोड़ा माना जाता है। वह वरुण के समान पाश धारण करनेवाला तथा आगत मृत्यु के चिन्ह रूप पक्षी को भेजनेवाला है। वैदिक कल्पना के अनुसार वह वरुण के साथ स्वर्ग में रहनेवाला है। इस यम को

उत्तरकालीन पौराणिक कथाओं मे पितृलोक का देव मान कर पुण्य तथा पाप के फल देने वाला माना गया है, इतना ही नहीं किन्तु उसे राजा बना कर उसके आधीन प्रदेश का विस्तारसे वर्णन भी किया गया है।

१० वायु–तेजस्वी आकाश का देव है कि जिसको द्योष–इन्द्र–और अग्नि रूप से वर्णन किया है उसको ही वायु रूप से वर्णन किया है। उस का उग्र स्वरूप वात या मरुत् कहा जाता है, और उसका मृदु स्वरूप सरमा वा ग्रीक नाम मे हर्मीज़ हो ऐसा भी प्रतीत होता है। इस वायु को उत्तरकालीन कथाओं में एक भिन्न देव मान कर अनेक कथायें कही गई हैं। ग्रीसदेशीय युद्ध देव एरीस तथा लेटिन देव मार्स और मोर्स तथा ट्युटोनिक देव थोर मियोल्निर उक्त मरुत् शब्द के धातु मे बने हों ऐसा कह सकते हैं। रुद्र को वायु का पिता माना गया है, तथा हर्मीज़ की न्याई उस को ठग लुटेरा वा तस्कर रूप से भी लिखा गया है।

११ अश्विनौ–इनका दूसरा वैदिक नाम 'नासत्यौ' सत्यनिष्ठ है। ग्रीक भाषा में इनको द्योष्कुरी=झ्युस के पुत्र कहा गया है। लेटिन कथाओं में उनको ज्युपिटर के पुत्र कॅस्टर व पॉलकस के नामसे परिचय दिया गया है। वैदिक कल्पना के अनुसार वे युग्मजात अश्विनौ उषादेवी के दूत हैं। वे यौवन, सौन्दर्य, प्रभा, तथा त्वरित गतिवाले माने जाते हैं। इन दो

देवताओं का जोड़ा परोपकार के अनेक कार्य करता है। द्यौ व पृथिवी, सूर्य चंद्र, सायं प्रातः दिनरात, ऐसे द्वन्द्व सूचक ये जोड़े हैं। इन को देवों का वैद्य भी कहा गया है। वे स्वभाव से परोपकारी हैं, और इन्द्रादि की तरह उनको भी वृत्रहन् गिना गया है, वे अपने स्वरूप स्वेच्छा से बदल सकते हैं। नोर्स पुराण कथा में डेपलग्रिमकी कथा मे वैदिक अश्विनौ का उल्लेख है, अतः उत्तर देशीय आर्य तथा ग्रीस व हिन्दुस्थान के आर्यों में अश्विनी कुमार की कथा का आमतौर पर प्रचार था ऐसा कह सकते हैं।

इस स्थान पर हमारी प्रथम वर्गीय कथाओं की समीक्षा पूरी होती है, वैदिक देवी देवता ग्रीस के किस किस देवी देवता से साम्य रखते हैं, यह अच्छी तरह प्रतीत हो गया है, अतः प्रथम वर्ग की दोनों कथा की शाखायें कैसे फली फूलीं यह थोड़े में ही जान सकते हैं।

१२ हिन्दुओं के पुराण

हिन्दुओं के पुराणों में वेदोक्त कथाओं का विस्तार किया गया है। पुराण मात्र के समान्यतः पांच लक्षण इस प्रकार हैं। (१) सर्ग (२) प्रतिसर्ग (३) वंश (४) मन्वन्तर और (५) वंशानुचरित्र अर्थात् उनके विषय में (१) सृष्टि (२) प्रलय (३) देवता तथा प्रजापति आदि का वंश (४) मन्वन्तर सम्बन्धी कथायें (५) सूर्य और चंद्र वंश के राजर्षियों के चारित्रों का समावेश

किया गया है। इसके सिवाय ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी एवं षड् दर्शनों के सिद्धान्त भक्ति ज्ञानादि विषयों की भी बोधक चर्चा उसमें की जाती है। कुल पुराण अठारह हैं। उनके नाम यह हैं। (१) ब्रह्मपुराण (२) पद्मपुराण (३) विष्णु पुराण (४) शिव पुराण (५) भागवत (६) नारद पुराण (७) मार्कण्डेय पुराण (८) अग्नि पुराण (९) भविष्य पुराण (१०) ब्रह्म वैवर्त पुराण (११) लिंग पुराण (१२) वराह पुराण (१३) स्कंद पुराण (१४) वामन पुराण (१५) कूर्म पुराण (१६) मत्स्य पुराण (१७) गरुड पुराण तथा (१८) ब्रह्माण्ड पुराण। इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं।

१३ पुराणोक्त विश्वोत्पत्ति

अति प्राचीन कालीन वेदान्तर्गत विश्वोत्पत्ति संबन्धी विचारोंने स्थायी रूप नहीं पकड़ा था कि मूल आर्य प्रजा के विभाग होने पर सिन्धुतटवासिनी आर्य प्रजाने अपनी अव्यवस्थित भावनाओं को व्यवस्थित करनेका उपक्रम कर दिया था। ग्रीस देश की आर्य प्रजाने क्रेटास वा क्रतुः को अपना तथा देवों का आदिपुरुष माना था, एवं हिन्दवासिनी आर्य प्रजाने कश्यप को अपना तथा देवताओं का आदिपुरुष माना था, बिना पिता के कश्यप भी नहीं हो सकता था अतः मरीचि को उसका पिता बनाया। मरीचि व क्रतु ब्रह्मा के मानस पुत्र होते हैं अर्थात् इस दृष्टिसे देखते हुए क्रतु और कश्यप चाचा भतीजा

हुवे। हिन्दुस्थान की तरफ आये हुवे आर्य लोग स्थिर स्थावर होने पर अपने अपने पृथक पृथक् विचारों के संकलित करने का काम करने लगे, परिणाम में विश्वोत्पत्तिवाद को स्थायी रूप दे दिया। यहां के लोगोंका रचा हुवा विश्वोत्पत्तिवाद विविध प्रकार से रचा गया है, ऐसा हिंदूशास्त्रों को देखने से मालूम पड़ता है, तो भी हिन्दू लोग अपनी पूर्वजों की असली भावना को अनुसरण करने वाले थे, अथवा उनकी पूजक बुद्धि प्रबल थी, अतः वे लोग हिरण्य गर्भ, विषयिणी भावनाओं को अस्वीकार नहीं कर सके। ग्रीसदेशीय आर्यों ने भी सुवर्ण-अण्ड वा हिरण्य गर्भ की भावना का त्याग नहीं किया। उभय देशीय आर्य कुलोंने उक्त प्रकार की भावना का दृढता से पालन कर रक्खा था, और अपने अपने विश्वोत्पत्ति वाद में उन भावनाओं को पिरो दिया। जिस प्रकार ग्रीस के विश्वोत्पत्ति वाद ने अनेक रूप धारण किये इसी प्रकार हिन्दु शास्त्रों के विश्वोत्पत्ति वाद के भी अनेक रूप हैं, ग्रीस देशीय पौराणिक कवि होमर के कथनानुसार रिवर-ओशन (सरिता—सागर) इस नामके प्रलय ने जिस समय पृथ्वी तथा समुद्र को घेर लिया था, उस समय उससे सब पैदा हुवा था। दूसरी कथायें कहती हैं कि सृष्टि में प्रथम दो तत्त्व निशा और अन्धकार थे, उनसे प्रकाश उत्पन्न हुवा, एवं आर्फीयस विश्वाण्डकी कल्पना कर एक भाग से स्वर्ग और दूसरे भाग में पृथ्वी की उत्पत्ति बतलाते हैं, और कवि हीसिआड के मतानुसार आदि काल में व्यस्तता,

(केऑस) मात्र थी, उससे पृथ्वी तथा एरॉस (इराजः) नामकी उत्पति हुईथी । इस संक्षिप्त वर्णित ग्रीसदेशीय विश्वोत्पत्ति वाद को ध्यान में रखकर हम हिन्दु शास्त्रों के उत्पत्तिवाद की आलोचना करें तो दोनों के साधारण लक्षण सहजतया ध्यान में आ सकते हैं । मनुस्मृति में विश्वोत्पत्ति के विषय में लिखा है कि प्रथम सृष्टि मात्र तिमिराच्छादित थी और उसमें अन्धकार को नाश करता हुवा स्वयंभू प्रकट हुवा । उसने प्रथम जल वा तनु उत्पन्न किया, और उसमें स्वर्णमय अण्ड हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया, और उस गर्भ में वे खुद ब्रह्मा रूपसे व्यक्त स्वरूप को प्राप्त हुवे । ब्रह्मा शब्द का धातु बृंह है उसका अर्थ बढना पोषण करना बोलना वा प्रकाश करना होता है । फिर उसने सुवर्णमय अन्ड के दो विभाग करके एक कपाल से स्वर्ग व दूसरे से पृथ्वी की रचना की, फिर मरीचि क्रतुः आदि दश मानस पुत्र पैदाकर उनसे सृष्टि रचनाका कार्य पूरा करवाया । रामायण के लेखानुसार आकाश से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, उसके पुत्र मरीचि से कश्यप और कश्यप से विवस्वत और उससे मनुका जन्म हुवा, यह मनु मानवजाति का आदिपूर्वज था । वायु पुराण में विस्तृत एवं सुघटित रीति से दिये गए विश्वोत्पत्तिवाद के अनुसार अन्तविनाका स्वतःसिद्ध जगत् का कारण महत्तत्व अविज्ञेय ब्रह्म पहिले उत्पन्न हुवा । ब्रह्म रूपसे व्याप्त यह सम्पूर्ण जगत् अन्धकारमय था, उससे महान्-अर्थात् ब्रह्मा-प्रकाश करने वाला उत्पन्न हुवा,

उससे क्रमशः अहंकार, आकाश, वायु, जल, पृथिवी उत्पन्न हुवे, फिर दस वैकारिक देवता और मन उत्पन्न हुवा, किन्तु प्रत्येक प्रजा के उत्पन्न करने में असमर्थ होने से एक दूसरे के आश्रय से एक अण्डा उत्पन्न किया, वह अण्डा जल विशेष से प्रकाशमान् था। वह एक ही समय में जल बुद्बुद की तरह उत्पन्न होने पर ब्रह्म संज्ञावाले क्षेत्रज्ञ में प्रवेश कर गया, वहां प्रथम देह धारी पुरुष कहलाता है। वही ब्रह्मा है, सुवर्णमय मेरु उस ब्रह्मा का हार है समुद्रों में गर्भ का जल है, पर्वत झरने आदि अस्थि है। शिव पुराण में लिखा है कि प्रथम अव्यक्त से महत्तत्व उत्पन्न हुवा, उससे ब्रह्मा, उससे ब्रह्माण्ड, उसके रुधिर से समुद्र, उदर से आकाश, निःश्वाससे पवन, जटराग्नि से तेज, एवं रस से नदियां उत्पन्न हुईं। इस अण्ड रूपी जगत् से बाहर दसगुना पानी है, उससे दसगुना तेज उससे दसगुना वायु उस को घेरे हुवे है। उस वायु पर आकाश है आकाश भूतों से घिरा हुवा है एवं भूत महत्तत्वों से घिरे हुवे हैं। "जिस तरह कछुवा (सूर्य) पहले अपने सब अंग खोलता है और फिर सकोड़ लेता है" उसी तरह इस जगत् का उत्पादक इस को उत्पन्न कर फिर उसका नाश करता है। इसी पुराण में यह भी कहा है कि प्रथम स्वयंभू भगवान् को जब भिन्न प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई, तब उसने जल उत्पन्न किया तथा उसमें अपना वीर्य डाला। उस जल उत्पन्न करने वाले देव को ब्रह्मा विष्णु महेश का भी आदि कारण समझना

चाहिये। जलमें शयन करने से ही यह देव नारायण कहलाया उसने जलमें जो वीर्य (शाक्ति) डाला था उससे एक स्वर्णमय अण्डा पैदा हुवा, उस से स्वयंभू ब्रह्मा पैदा हुवा, एक वर्ष पर्यन्त निवास करने पर उस अण्डे के दो टुकड़े किये, ऊपर के टुकड़े को स्वर्ग तथा दूसरे को पृथिवी बनाया, उसमें भी चौदह लोक की कल्पना कर मध्य भाग में आकाश को स्थान दिया। भागवतादि पुराण भी इस से सहमत हैं। यद्यपि सब पुराणों के वर्णन सर्वांश मे नहीं मिलते तोभी हिरण्यगर्भ वा सुवर्ण अण्ड रूपी धुरे पर सृष्टि रचना की सब कल्पनाएं फिरती हुई मालूम पड़ती हैं ऐसा हिन्दु तथा ग्रीक पुराणों से प्रतीत होता है। आर्योंने पश्चात् तत्त्व-विद्या को जन्म देकर मूल कल्पना के साथ तात्त्विक विचारों को मिला दिया ऐसा पुराणोक्त वर्णनों के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है।

१४ देवताओं की उत्पत्ति

वायु पुराण में इस विषय में ऐसा लिखा है कि 'ब्रह्मने ब्रह्मा का स्वरूप धारण किया' अर्थात् ध्यान करते हुए प्रजापतिको श्रम हुवा, फिर जंघा से असुर पुत्र का जन्म हुवा। असु का अर्थ प्राण है. उस से वे उत्पन्न हुए इस लिये वे असुर कहलाये जिस देह से ब्रह्माने असुरों को उत्पन्न किया, उस देह का उन्होंने त्याग किया, तब वह देह तत्काल रात्रि रूप हो गई, वह अन्ध-कारमयी है इस लिये रात्रि वा त्रियामा कहलाती है। फिर सत्वगुण

वाली दूसरी सुन्दर देह ब्रह्माने धारण की, तब तेजस्वी ब्रह्मा के मुख से तेजस्वी देवता उत्पन्न हुवे। फिर रात्रि और दिन की सन्धि में उन्होंने पितृ लोग बना कर देह त्याग किया, तब वह देह सन्ध्या रूप हो गई। इससे देवका दिन और असुर का रात्रि कहलाई, फिर रजोगुण वाले शरीरसे मानव सृष्टि उत्पन्न कर जब देह का त्याग किया तब वह देह ज्योत्स्ना रूपको प्राप्त हो कर सरस्वती भृगु. अंगिरा आदि सात मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया, उसके बाद क्रोध से रुद्र संकल्प व धर्म नाम के पुत्र पैदा किये, किन्तु जब वे सृष्टिकी उत्पत्तिकी इच्छारहित दीख पड़े, तब ब्रह्माने अर्ध पुरुष देह वाले तथा अर्ध स्त्रीदेह वाले अग्नि जैसा तेजस्वी पुरुष उत्पन्न किया, फिर वह उभय एकत्रित देह भिन्न होते ही पुरुष विभाग ग्यारह प्रकार का हो गया। ये ग्यारह देहधारी रोने लगे, व चारों तरफ दौड़ने लगे, इसी लिये वे रुद्र कहलाये। ब्रह्माके मुंह से जो स्त्री उत्पन्न हुई थी उसका अर्ध दक्षिण देह श्वेत व दूसरा अर्ध उत्तर देह काला था जब वे दोनों देह अलग होने लगे तब उस देवी की शुक्ला व कृष्णा दो देविया बनगई, वे देवियां अरण्य में घर में नगर में रण में, मनुष्यों का रक्षण करने वाली गिनी जाती हैं। शिव पुराण के अनुसार प्रथम सत् असत् रूप परमात्मा था, उसने सर्व प्राणियों के आदि देव ब्रह्मा को उत्पन्न किया, उसने प्रथम जल उत्पन्न किया और उसमें अपना वीर्य डाला, तत्पश्चात् मरीचि आदि सातपुत्र

मनसे उत्पन्न किये, फिर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले सनत्कुमार आदिको पैदा किया, फिर ब्रह्माने मुख से देवों को, वृक्षसे पितरों को इंद्रिय, से मनुष्य को, और जंघासे असुरों को जन्म दिया। लेकिन प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब अपने शरीर के अर्धभाग को स्त्री एवं अर्धभाग को पुरुष बना कर प्रजा को उत्पन्न किया, इस सर्जनहार विराट पुरुष को दूसरा मनु समझना, फिर ब्रह्मासे उत्पन्न हुई शतरूपा स्वायम्भू मनुसे शादी हुई, उनसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा काम्या नामकी पुत्री उत्पन्न हुई, फिर उनके वंशों का विस्तार हुवा। मत्स्यपुराण के कथनानुसार प्रथम दक्ष प्रजापति के एक हजार पुत्र उत्पन्न किये, वे सब अनेक दिशाओं में चले गये, तब फिर उस प्रजापतिने शबला नाम से प्रसिद्ध एक हजार पुत्र उत्पन्न किये, एवं वे सब विप्र नामसे पहिचाने जाने लगे। इन्होंने भी वैसा किया अर्थात् दक्षने साठ कन्या पैदा कर दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस सोम को चार अरिष्टनेमा को, दो भृगु पुत्र को, दो कृशाश्व को, दो अंगिरस को दे दी। वे सब देवमातायें कहलाई। कश्यप की स्त्री अदिति से बारह आदित्य अर्थात् इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, यम, विवस्वान् सविता पूषा, अंशुमान व विष्णु उत्पन्न हुवे, और उन की दिति नाम की पत्नी से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र पैदा हुवे।

उपर्युक्त प्रकार से देवताओं की उत्पत्ति हुई थी। हिन्दुओं के पुराणों में विश्व तथा देवताओं की सृष्टि के विषय में सूक्ष्मातिसूक्ष्म बड़े लम्बे लम्बे वर्णन आये हैं। इन सब का तात्पर्य यही है कि ग्रीस देश की सृष्ट्युत्पत्ति संबन्धी कथायें तथा हिन्दुओं की पुराणान्तर्गत कथाओं का मूल एक ही है। जैसे विश्वाण्ड के दो भाग एक स्वर्ग दूसरी पृथ्वी सब जगत् प्रथम अंधकारमय अव्यक्त था, ब्रह्मा की प्रथम देह निशा, दूसरी देह से तेजस्वी देव पैदा हुवा, उभय के संयोग लग्न से पितरों की उत्पत्ति इत्यादि। प्रथम एक ही बीज था वह भिन्न भिन्न भूमिओं में बोए जाने पर उसके विविध फलयुक्त कल्प वृक्ष उत्पन्न हुए। ग्रीस देशके टाइटन—वे ही दैत्य, ग्रीस का आदि पूर्वज क्रोनस (क्रतु) हिन्दुओं का आदि पूर्वज कश्यप है क्रोनसने ज्युपिटर वज्यूनो को पैदा किया, इधर कश्यप को आदिति से वरुणादि बारह आदित्य व दिति से दैत्य पैदा हुवे। जिस तरह देवता व दैत्यों की लड़ाई हुई उसी तरह वहां आउरेनेस (यूरेनस-वरुण) के पुत्र टाइटन (दैत्य) क्रोनस के ज्युपिटर के साथ लड़े। उक्त कथाओं में आने वाले नामों की उपयोगिता को गौण पद दे कर हम यदि कथा के रहस्य को ही लक्ष्य में रखेंगे तो हमें प्रत्यक्ष लगेगा कि एक पिता से भी भिन्न भिन्न माताओं द्वारा उत्पन्न कुटुंबों में होनेवाली लड़ाइएं, उक्त उभय देश की कथाओं में एक रीति से कथा रूप दिया है। आकाश अनन्त है इस लिये अदिति रूप है—पृथ्वी अन्त वाली है इस लिये दिति

कहलाती है। आकाश में उत्पन्न होवे वह देव, पृथ्वी से उत्पन्न होवे वह दैत्य, दोनों का पैदा करने वाला वह द्यौष्पितर ब्रह्मा, यूरेनस=वरुण गी=पृथ्वी से परिणीत हुवा तब टाइटनों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा पुत्र कश्यप की दितिसे शादी हुई तब दैत्य पैदा हुवे। प्राचीनकाल में एक देव के अनेक नाम थे, सो पुराण काल में एक देव के अनेक देव हो गये, और परिणाम में इन्द्र वरुण मित्र यम सविता आदि भिन्न भिन्न देव हैं ऐसी कल्पना हो गई, इतना ही नहीं परन्तु ग्रीस देशीय कल्पना में भी देखा जाता है उसी प्रकार हिन्दु पुराणों में प्रत्येक देव की राष्ट्र विभाग कल्पना भी दीख पड़ती है। ग्रीस में जिस तरह ज्युपिटर सब देवों का अधिराज बना, इसी तरह हिंदुस्थान के आर्य कुल ने इन्द्र को देवाधिदेव माना वरुण को हिंदुओंने जलाधिदेव माना उसी तरह आउरेनोस के पुत्र ओशियानस पोसिडोन को ग्रीक प्रजाने जल का अधिष्ठाता माना। इस प्रकार हिन्दु तथा ग्रीस के आर्य कुलोंने एकेश्वरवाद में से अनेकेश्वरवाद को जन्म देकर अपनी रुचिअनुसार देवों की परंपरा गढ़ली है।

१५ ब्रह्मा—हिन्द निवासी आर्य ही इस को मानते हैं, ग्रीक आदि आर्यकुलों से मान्य देव सृष्टि में इस का नाम भी नहीं है। बृह से यह शब्द बना है—वृद्धिपाना, बोलना, प्रकाशित होना, गाजना इत्यादि इस के अर्थ हैं, वेद मे ब्रह्मन् शब्द है उससे इस शब्द की कल्पना हुई है। धात्वर्थ अनुसार ब्रह्मा का अर्थ विश्व की वृद्धि करने वाला, इसी लिये

शायद आदि प्रजापति का पद दिया गया है। बृंह का प्रकाश अर्थ लेने पर द्यौष्पितर मित्र वरुण सूर्य आदि का मौलिक तेजस्विता अर्थ आ जाता है। तब ब्रह्मा का अर्थ तेजस्वी देव, तब हिरण्यगर्भ व ब्रह्मा एक ही है। तब उभय देशों की सुवर्णमय अण्ड विषयिणी कथा का साम्य निश्चित किया जा सकता है। झ्युसपितर के सिरसे एथेनी का जन्म उसी तरह ब्रह्मा के सिरसे सरस्वती का जन्म हुवा है। अति प्राचीन वेद-काल में उषा वा दहना को सूर्य वा द्यौष्पितर की पुत्री वा योषा माना है। पुराण कालीन ब्रह्मा वही वेद कालीन सूर्य वा द्यौष्पि-तर है। पुराण कालीन सरस्वती यही वेद कालीन उषा या दहना या ग्रीस देशीय एथेनी है। उषा सूर्य की योषा है ही। ब्रह्मा सरस्वती के मोह में पड़कर उस के पीछे दौड़े थे, यह कथा वेद-कालीन सूर्य उषा का शब्दान्तर होना संभव है। पुरातन काल के हिन्दू अपनी बातों के रक्षण करने में कितने उत्सुक थे यह इस कथा से मालूम पड़ता है। अनेकेश्वर की भावना में एके-श्वर की भावना पालन करना यहां के आर्य भूले नहीं, ब्रह्म रूप से विश्वका सर्जन करता है विष्णु रूप से पालन करता है, रुद्र रूप से संहार करता है। एक स्थान से उद्भूत इस शक्ति यंत्र को भिन्न भिन्न देवताओं के रूप से कल्पित किया गया है। ब्रह्मा श्री कृष्ण वा नारायण के नाभि कमल से (जल में तरते सुवर्ण अण्ड में) उत्पन्न हुवा था, उस के पांच सिर थे, उसमें से एक शिव वा इन्द्रने छिन्न कर दिया था, ऐसी

एक पौराणिक कथा है। रामायण के लेखानुसार अहल्या ब्रह्मा की पुत्री थी, उस का विवाह गौतम ऋषि से किया था, ब्रह्मा अपनी बेटी सरस्वती पर मुग्ध होकर उसके पीछे पड़े थे! ब्रह्माके मस्तक से सरस्वती की उत्पत्ति हुई थी, इसी लिये उस की वह पुत्री कहलाती है एवं वह देवी—प्रकृति पुरुष ब्रह्मा के साथ संलग्न हो रही है। इस से वह उस की वल्लभा कहलाती है।

१६ वरुण—जो वरुण वैदिक कालमें धृतव्रत सर्वज्ञ मेधावी, उरुचक्षा, एवं आकाश तथा पृथ्वीका राजा गिना जाता है वह वरुण पुराण कथाओं में उच्चतम पद से भ्रष्ट होकर इन्द्र के समान गौणपद धारण करने वाला बन जाता है उसकी सर्वेश्वरता भग्न होकर वह केवल जलका अधिष्ठाता बन जाता है, वैदिक कल्पना के अनुसार वरुण मित्र इन्द्र अग्नि सूर्य वगैरह बारह आदित्य देवमाता अदिति के पुत्र थे, इसीसे वे सब भाई थे, ग्रीशीयन आर्यो ने भी आउरेनोस को झ्युस कह कर द्यौष का भाई माना है, और इस प्रकार मान कर जब राष्ट्रविभाग को कल्पना की गई, तब झ्युस को स्वर्ग तथा आउरेनोस को समुद्र का राजा बना दिया है, इसीप्रकार पुराण कालीन हिन्दु आर्योंने भी द्यौष के स्थान पर इन्द्र की स्थापना कर उसे स्वर्ग का अधीश्वर बनाया है, उसके भाई वरुण को जलाधि देव का पद देकर वरुण की शक्ति पत्नी वरुणानी के नाम से कही जाती है, वायु पुराण के कथनानुसार

समुद्र की पुत्री शुनोदेवी के साथ वरुण की शादी हुई थी, और उस पत्नी से कलि व वैद्य नामक दो पुत्र सुर सुन्दरी नाम की पुत्री उत्पन्न हुई थी, वे दोनों वरुण के पुत्र एक दूसरे का भक्षण कर के नष्ट हुवे थे, सुरा के बाद कालि नामक पुत्र हुवा, व कलि को विश्वकर्मा की पुत्री हिंसा वा निकृति से चार पुत्र उत्पन्न हुवे थे, इनमें से सद्रम व विधम नामक पुत्रों से नैऋत नामक बालक को पीड़ा देने वाले राक्षस पैदा हुवे थे। लेटिन नेप्चुन के पुत्र भी इसी स्वभाव के थे। आठ प्रकार के वसुवों के अर्थ में सूर्य पवन जल आदि तत्वों का समावेश हो जाता है, वैदिक-वरुण-सूर्यका एक एक रूप वसु है तव प्रभास नामक वरुणांश-वसु से बृहस्पति की ब्रह्मचारिणी बहिन के पेट से विश्वकर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुवा, इस विश्वकर्मा की पुत्री सुरेणु-सूर्य की स्त्री संज्ञा नामक हुई इससे यम व यमुना नामक मिथुन उत्पन्न हुवा, फिर संज्ञाने घोडी (वडवा) का रूप धारण कर अश्वरूप सूर्य के दो कुमार अश्विनी उत्पन्न किये, इनको वेद में नासत्यौ ऐसा कहते हैं, वे वैद्य एवं अश्वविद्यामें भी निष्णात थे, लेटिन प्रजामें वरुण वंश धर अश्विन की न्याई नेप्चुन भा अश्वविद्या में कुशल माना जाता है, नेप्चून का मिनर्वा के साथ स्पर्धा भी ध्यान रखने लायक हैं। हिन्दु आर्यों की उषा वा सरस्वती अखण्ड ब्रह्मचारिणी मिनर्वा हैं। बृहस्पति की बहिन भी आसक्ति रहित थी वह प्रभास नामक वसु की पत्नी हुई थी, उसी स विश्वकर्मा का जन्म हुवा था। मिनर्वा देवी को

शिल्प विद्या की अधिष्ठात्री मानते हैं। यही बात बृहस्पति की बहिन में घटती है एवं उस से विश्वकर्मा का जन्म होना भी संभवित है। शिव पुराण से ऐसा मालूम पड़ता है कि मित्र वरुण एक समय तप करते थे, इतने में नारायण की पसली से उत्पन्न हुई उर्वशी उसके पास गई, उसका वीर्य स्खलित हुवा उसको वरुणने जल में डाला, उससे अगस्त्य पैदा हुवा। इस अगस्त्य की कान्ति वडवानल जैसी थी, वह सम्पूर्ण समुद्र पी गया था। हिंदुस्थान की पुराण कथाओं में अवतार वाद ऐसा घुसा हुवा है कि मनुष्यों के समान देवताओं को भी अनेक जन्म लेने पड़ते हैं। जो देव एक समय पितारूप था वही दूसरी बखत पुत्ररूप से जन्म लेता है। इस लिये तुलनात्मक समीक्षा करना अशक्य सा हो जाता है। वरुणने एक समय यज्ञ किया था। ब्रह्मा की कृपा से भृगु नामक पुत्र उत्पन्न हुवा, भृगु तथा उसके पुत्र वारुण कहाते हैं। ब्रह्मा के वीर्य से अग्नि में मरीचि क्रतु अत्रि पुलस्त्य पुलह तथा वशिष्ठ नामक छ पुत्र हुवे थे। ये ब्रह्मा के वरुण के यज्ञमें उत्पन्न हुवे छ मानसपुत्र प्रजा मात्र की वृद्धि करने वाले माने जाते हैं। वरुण-यह मित्र-सूर्य है। सूर्य के कार्य से जो जो दृश्य उत्पन्न होते हैं उनको भिन्न भिन्न कथाओं के रूपमें वर्णन किया जाता है जल का अर्थ ढंकना है धातु के अनेक अर्थ होने से वरुण को पुराण कालमें जलाधिपति माना गया है। आकाश को वरुण सूर्य अपने तेजसे आच्छादित करता है। पृथ्वी को

वरुण जलसे ढांकता है । आकाश को ढंकने वाला वैदिक वरुण पौराणिक काल में सूर्य रूपसे था । पृथ्वी को आच्छादित करने वाला वरुण जल का अधिष्ठाता हो गया । परिणाम में इन्द्रादि देवों की अपेक्षा इसका स्थान गौण है ।

१७ इन्द्र-हिन्दु आर्योंने उसकी पूजा की है । ग्रीक पुराण कथा में ज्युस तथा लेटिन पुराण कथाओं में ज्युपिटर का जो स्थान है वह स्थान द्यौष्पितर के बदले इन्द्र का मिला है । वेद में इसको अग्रस्थान मिला है लेकिन पुराणों में गौण स्थान दिया गया है । अनेक नामधारी एक ही देव से पुराण काल में अनेक नामधारी अनेक देव उत्पन्न हुवे हैं । इस सूत्र के अनुसार यद्यपि इन्द्र यह एक स्वतंत्र देव है परंतु अनेकतामें एकता का पालन करना इस आर्य बुद्धि से इन्द्र को गौण पद कश्यप तथा अदिति का पुत्र बनाकर दे दिया, एक द्यौष्पितर के ब्रह्म विष्णु महेश रूप से तीन शक्तियों की स्थापना की, देव माता अदिति के पुत्र इन्द्रादि बारह आदित्यों को उनके उच्चस्थान से पदभ्रष्ट कर गौणपद दे दिया है । एवं वैदिक देव पुराण कालीन युगमें माता पिता वाले हो गये । ज्युपिटर के समान इन्द्र को मुख्य देव माना गया, तथा सुरेश देवेन्द्र आदि पदवी प्राप्त हुई, लेकिन उसके पराक्रम वैसे के वैसे कायम रहे । वेद की न्याई पुराण में भी आकाश का अधिष्ठाता स्वर्ग का स्वामी माना गया । ज्युपिटर की न्याई यह बिजली का उत्पादक वज्र धारण करने वाला, वप को

बरसाने वाला है। उसको वैदिक वृत्र आदि असुरों के साथ सतत युद्ध करना पड़ता है, उसमें वैदिक काल का सर्व शक्तिमान् इन्द्र कभी कभी पराजित भी होता, है तथा विजय भी प्राप्त करता है। राजधानी अमरावती के नंदन नामक उद्यान के वैजयन्त प्रासाद में निवास करता है, हाथी का नाम ऐरावत है वह सात मूंड वाला सफेद हाथी है। उसके सारथि का नाम मातलि, स्त्री का नाम इन्द्राणी हैं। ज्युपिटर के न्याई इन्द्र भी मनुष्य जाति की स्त्रियों से प्रेम करता है ऐसा प्रतीत होता है। गौत्तम की पत्नी अहल्या से व्यभिचार किया, अतः अहिल्या जार भी कहलाता है, गौत्तम के शाप से वह सहस्रभग हुवा, तथा सयोनि नाम पड़ा पीछे से ये योनियां नेत्र के रूप मे परिणत हो गई। अतः उने नेत्रयोनि या सहस्राक्ष भी कहते हैं, ज्युपिटर अपनी इच्छा 'एपोलो' सूर्यद्वारा प्रकट करता है, वैसे ही हिन्दुओं का द्यौष्पितर इन्द्र भी सहस्राक्ष (सूर्य) रूप से व्यक्त होता हो ऐसा यह कथा बतलाती है। रामायण के लेखानुसार रावण के पुत्र मेघनाद उसको हराकर लंका ले आया था, लेकिन ब्रह्मा आदि देवताओं ने बीच विचार कर के उसको छुड़ा दिया था। तप करते हुवे ऋषियों से वह हमेशा डरता था। ज्युपिटर के माफक वह अपने पद के लिये बड़ा चिन्तित रहता था, अप्सरायें उसके दरबार में नृत्य करती थीं, उनके द्वारा अपने अनेक कार्य सिद्ध करता है, दिति के साथ संभोग कर जो गर्भ रहा था उसके

४९ टुकड़े कर डाले थे उससे मरुतों की उत्पत्ति हुई थी, उनको वायु रूप से आकाश में स्थापित कर दिया था। पुलोमन् की स्त्रीपर भी बलात्कार किया था, शाप के डर से पुलोमन् को मार डाला था, उसको कृष्णने हराया था, उसकी पत्नी इन्द्राणी पुलोमन की पुत्री थी। महाभारत के प्रसिद्ध अर्जुन का वह पिता था। प्रेम लीला, सामर्थ्य, देवाधिपत्य, देव होते हुवे मनुष्य के समागम में आनेवाले हिंदुस्थान का इन्द्र ज्युपिटर के साथ साम्य रखता है। वैदिक दृष्टि से देखते हुवे इन्द्र यही सूर्य व अहल्या यही रात्रि है। इन्द्रने आकाश में रहने वाले अन्धकार=गौतम की स्त्री रात्री=अहल्या का सूर्य रूप से अपहरण किया, यह बात भी स्पष्ट हो जाती है।

१८ अग्नि—वेद में ये देव अग्नि वरुण इंन्द्र वगैरह समान धर्म वाले बतलाये गये हैं। और इन सब से एक ही प्रकार का रहस्य सूचित होता है। जब एकार्थ सूचक अनेक शब्दों के भिन्न भिन्न देवता मान लिये गये, तब पुराण काल में अग्नि भी स्वतन्त्र रूपसे माना जाने लगा, ग्रीस देशीय तथा लेटिन पुराण कथाओं में अग्निनामक कोई देव नहीं दीखता। यह विष्णु पुराण का 'अभिमानी' अग्नि वायु पुराण के अनुसार ब्रह्मा का मानस पुत्र था, उसको अपनी स्त्री स्वाहा से पावक पवमान शुचि वा शौर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुवे थे इन के भी ४९ पुत्र हुवे थे जो अग्निके उतने ही प्रकार बताते हैं। अग्नि को आगेपीछे दो मुख हैं तीन पैर व सात हाथ हैं, इसका वाहन मेंढी

है, इसकी माताका नाम वनस्पति है। उसे अंगिरा का पिता, पुत्र तथा पितरों का राजा मानागया है, हरिवंश के वर्णन के अनुसार श्याम वस्त्र धारण करने वाला, धूम ध्वज, एवं शूल धारण करने वाले वह सात मरुतों से खैंच हुवे रथमें बैठता है। ब्रह्माने उसे अग्नि कोण का अधिष्ठाता बनाया है। महाभारत के वर्णन के अनुसार श्वेत केतु के यज्ञमें हुत बलि को खाकर वह कृश हो गया है, किन्तु सम्पूर्ण खाण्डववन खाकर अपनी नष्ट प्रायः शक्ति फिर प्राप्त करली है, वह वन इंद्रका था अर्जुन ने खाने के लिए अग्नि को सौंपा था, अतएव इंद्र के साथ अर्जुन को युद्ध करना पड़ा, अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर अग्नि ने उसको गाण्डीव धनुष्य व अक्षयभाथा विजयरथ दिया, एक समय अग्नि ब्राह्मण का वेष लेकर शिव के यहां याचना करने गया, लेकिन शिव अंबा के साथ विहार कर रहे थे, उस से गुस्से होकर शिवने अपना वीर्य अग्नि को दिया, उसको पीने के पश्चात् जब अग्नि उसको सहन न कर सका तो गंगामें बहा दिया, उससे कार्तिकेय का जन्म हुआ, इसी से उस को शिवपुत्र कहते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि सप्तऋषिओं की स्त्रियों का देख कर अग्नि को काम उत्पन्न हुवा, उससे उसकी स्त्री स्वाहाने अरुन्धती को छोड़ कर क्रमशः सबकी स्त्रियों का रूप धारण कर उसकी कामनायें पूरी कीं जिसके परिणाम में छ वार के संयोगसे छ मुखवाले कार्तिकेय का जन्म हुवा, शिव पुराण में अग्निके व्याभिचारों के वर्णन दिये हैं, इसी प्रकार उसने

कर्नाटक तथा ब्राह्मण की स्त्रियों के साथ व्यभिचार किया था, जिससे वहां के राजा नीलने कैद कर के उसको अपना दास बनाया था, और फिर किलेपर चढा धक्का मार कर गिरा दिया था। अग्नि पुराण के अनुसार अग्नि व सूर्य एक दूसरे के प्रतिनिधि रूपसे कार्य करते हैं। अग्नि का पुत्र शुचि वह पार्थिव अग्नि है और वह सूर्य में तपता है, उसकी आकृति घडे की न्याई है कान्तियुक्त एवं वर्तुलाकृति का वह है, वह अपने सहस्रों किरणों से नदी समुद्रादि जलाशयों का जल पीता है। इससे यह मालूम होता है कि अग्नि और सूर्य जुदे जुदे देव नहीं है, परन्तु कार्य के सबब से नाम में भेद है, हिन्दु पुराणों में अवतार वाद को इतना अलंकारिक कर दिया है कि उसका पृथक्करण करने पर उसके मूल में रहे हुवे वेद कालीन एकेश्वर वाद का ज्ञान अवश्य हो जाता है। युरोपीय पुराणों में हर्मीज् की न्याई हिन्दुओं का अग्नि देव यज्ञ की आहुतियां देवताओं के पास पहुंचाता है, विष्णु नामक सूर्य की जीभ है, वह आदि मुनिका पुत्र था, काष्ठ के दो टुकड़ों को घिसकर उसके बीच से उत्पन्न किया था, ग्रीस देशीय हेष्टिया व रोमन वेस्टा (यज्ञ वेदि के अग्नि की अखण्ड ब्रह्मचारिणी देवी) आदि शब्दों का प्रयोग संस्कृत यज् व वस् से बना है, अतः अग्नि वाचक शब्द यविष्ठ एवं पृथिवि का स्पर्श होने से वसु का आर्य प्रजामें कितना मान था वह सहज मालूम होता है। प्रत्येक आर्यगृह अतिथि को सन्मान देना अपना

कर्तव्य समझता था, एवं घेरलू सब कार्य यज्ञवेदिको साक्षी मानकर किये जाते थे अग्नि को गृह मात्र का रक्षक व पालक देव समझा जाता था, अतः उसमें रक्षित शक्तियोंको ग्रीस देशीय तथा रोमन् आर्य प्रजाने देवी रूपेण कल्पना कर उनको उक्त प्रकार के नाम दिये हों यह अधिक संभवित है। अग्नि कभी बूढा नहीं होता, अतएव उसको यविष्ठ यह हिन्दु आर्यों ने नाम दिया है, ग्रीस देशीय आर्योंने उसको हफीस्टस नाम दे रक्खा है, यह हफीस्टस झ्युस का पुत्र था, हम पहिले वरुण को द्यौष् रूप से एवं सूर्यरूप से भी कह गये हैं, इससे वरुण-सूर्य का प्रत्येक स्वरूप एक एक वसु है ऐसा मानने पर वसु यविष्ठ वा हफीस्टस' द्यौष् वा झ्युस का पुत्र आर्य कल्पनानुसार करने में कुछ आश्चर्य नहीं, एवं वसु=बृहस्पति=झ्युस की ब्रह्मचारिणी बहिन (झ्युसकी स्त्री हीरा) से हिन्दू शास्त्रानुसार विश्वकर्मा तथा रोमन कथाओं में वल्कन के नामसे प्रसिद्ध शिल्पशास्त्रज्ञ देव उत्पन्न हुवे। हिन्दुओं में विश्वकर्मा, ग्रीस लोगों हफीस्टस तथा रोमन लोगों मे वल्कन नाम प्रसिद्ध है, इस विवेचनसे आपको मालूम होगा कि अनेक नामों से प्रसिद्ध देव द्यौष् केही वंशज हैं, अत एव तद्विषयक बीज अखिल आर्य प्रजाको स्वीकृत हो गया है। अवतार वाद का प्राबल्य एवं तद्विषयिणी देव सृष्टि की कृति इन दोनों तत्वों को छोड़ कथाबीज का वास्तविक स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाता है।

१९ सूर्य---वेद कालीन सूर्य से पौराणिक कालका सूर्य भिन्न स्थिति धारण करता है, वेदकालीन वरुण इन्द्रादि जिसतरह पुराण कालमें अपने उच्च स्थान से भ्रष्ट हो गये हैं उसी तरह सूर्य भी पौराणिक देव त्रिपुटी की स्थापना से गौण हो गया है, वह ब्रह्माका पौत्र कश्यप तथा उसकी पत्नी अदिति का पुराण कथा के अनुसार पुत्र है, उसके रथ को सात घोड (किरणें) जोडे जाते है, एवं अरुण (रक्त प्रकाश) उसके रथ को हांकने वाला सारथि है, सूर्य सर्व दर्शी है, पामर मनुष्यके अच्छे बुरे कार्मों का सदा साक्षी है, संज्ञा वा छाया उसकी पत्नी है, और उससे यम यमुना अश्विनौ व शनैश्चर नामक पुत्र पैदा होते हैं। सूर्यवंशी राजाओं के पूर्वज मनु ववस्वते का वह पिता है। विश्वकर्मा की संज्ञा वसुरेणु नामक पुत्रियां अपने स्वामी के रूपसे सन्तुष्ट नहीं हुई। सूर्य अपने पिता कश्यप की आज्ञासे मार्तण्ड हुवा, इससे उसका रूप प्रतिरोध पाकर शान्त वर्णवाला हो गया-अर्थात् संज्ञाने अपनी छाया को अपनी जैसी स्वरूप वती बनादिया, फिर संज्ञा की आज्ञा से छाया मार्तण्ड के घरमें रहने लगी, और खुद मूल संज्ञा नहीं है ऐसी बात उसने अपने स्वामी से नही की, संज्ञाको उसके बापने अपने घरमें रहनेकी मनाई करदी इस से वह वड़वा (घोडी) हो उत्तर कुरु देशमें जाकर घास चरने लगी। अब सूर्यने छाया को संज्ञा समझकर, उसके उदर से श्रुतश्रवा व श्रुतकर्मा ऐसे दो पुत्र उत्पन्न किये, ये दोनों

ही पुत्र पीछेसे सावर्ण्य मनु तथा शनैश्चर नामक ग्रह हुवे, छायाअब अपने पुत्रों पर संज्ञा के पुत्रों से विशेष प्रेम करने लगी, आखिर सूर्य पुत्र यमसे वह सहन नहीं हुवा, तब उसने अपनी अपर माता को एक लात प्रहार की, तब छायाने उसको शाप दिया और यमने-सूर्य के पास जाकर उसकी शिकायत की पर सूर्य उस शाप को मिथ्या न कर सकते थे, अतः उस को शापसे मुक्त होनेका मार्ग बतलाकर अपनी संज्ञा के रूपमें दीखती हुई छाया पत्निको असमान स्नेह बतलाने के वास्ते उलाहना दिया, छाया सच्ची बात अपनी पति को न कह सकी तब सूर्य ने क्रोध किया परिणाम में छाया ने सच बात कहदी, फिर सूर्य विश्वकर्मा के पास जाके संज्ञा के विरुद्ध फिर्याद करने लगा, विश्वकर्माने उसको शान्त करके कहा, तुम्हारे रूप को सहन न करने वाली संज्ञा हरे घास वाले वनमें चरती है, अतः तुम अपना उग्ररूप छोड़ कर सदाचार युक्त संज्ञा के पास जाओ अपना तेज शाणपर चढाके थोडा करवाया, एवं अश्वका रूप धारण कर अपना वीर्य उस वडवा रूपी संज्ञा के मुंह में डाला, पर संज्ञा को पर पुरुष की शंका होने से उस वीर्य को नासिका के दोनों छेदों से बाहर निकाल दिया, उस से दो अश्विन नासत्य और दस्र का जन्म हुआ, इस प्रकार मार्तण्ड रूप सूर्यने संज्ञा को ढूंढकर अपना असली स्वरूप उसको बतलाया। तब वह भी सन्तुष्ट होकर उसपर मुग्ध हो गई, यमने धर्म पालन करके सन्तुष्ट किया इसलिये उसको पितरों का अधि-

पति बनाकर धर्मराज पद दिया, वैदिक सूर्य को मार्तण्ड का स्वरूप प्राप्त होनेपर उसकी स्त्री सूर्य संज्ञा रूप से पुराण काल में प्रसिद्ध होती है, द्यौष् की पुत्री उषा (सूर्यकी) मित्रा वरुणौ की बहिन एवं प्राणवल्लभा कहलाती है, यह बात हम पहिले पढ़ चुके हैं। इसीके अनुसन्धान में मार्तण्ड, सूर्य, मित्रा वरुणौ व द्यौष् ये सब देव एकही पुरुष के कालक्रम से विविध रूप हैं, एवं छाया संज्ञा सूर्या उषा आदि एकही देवियां शक्ति के भिन्न भिन्न नाम हैं। सुतराम् सूर्य को इन्द्रादि देवों की न्याई जार कर्म करने वाला माना गया है, उसने वसुदेवकी बहिन कुन्ती को सन्तुष्ट करने के वास्ते उसके उदर से कर्ण नामका पुत्र उत्पन्न किया, यह कर्ण पाण्डवों का भाई था, लेकिन उसका जन्म कुंती पाण्डु के विवाह से पूर्व हुआ था इस से उसकी समाज में निर्भर्त्सना होती थी, इसी लिये वह पाण्डवों के विरुद्ध पक्षमें भी था। एक ऋषि से शापित एक अप्सरा सर्पिणी रूपसे पैदा होने वाली थी वह ऋषि कृपा से पद्मिनी का रूप प्राप्त कर के सूर्य के दृष्टिगोचर हुई तब सूर्य का वीर्यस्खलित हो कर उस का अर्ध भाग उस की जीभ पर गिरा, तब उस के पेट से अहि-रावण का जन्म हुवा। सूर्य रक्षक देव है उसने कीचक से द्रौपदी का रक्षण किया था। सूर्य विष्णु है इस लिये इस का विष्णु की कथामें सविस्तर निरूपण करेंगे।

१२ अ विष्णु—वेद में सूर्य को विष्णु रूपसे वर्णित किया है। वेद काल का सूर्य वही पौराणिक काल का विष्णु है।

आकाश में सरकते हुए सूर्य के प्रवृत्ति की कलायें पृथ्वी पर अवतरण करने वाले सूर्य विष्णु के कर्म प्रतिबिंबित होते हैं ऐसा विष्णु की कथाओं से मालूम पड़ता है। व्याप्त होता है वह विष्णु सूर्य व्याप्त होता है इस लिये यह भी विष्णु है। वेद काल के अनेक नामधारी देवताओं में से हिन्दु आर्योंने देव मात्र की शक्ति का वर्गीकरण कर के ब्रह्मा विष्णु महेश इस त्रिपुटी की कल्पना स्थापित की तब उत्पादकता ब्रह्मा को पालकता विष्णु को संहारकता महेश को उन्होंने अर्पण कर दी, एवं वेद कालीन सूर्य की शक्ति का आरोपण विष्णु में हो गया था, इस विष्णुने भिन्न काल में सहेतुक दश अवतार धारण कर जन्म लिया था। एवंच प्रत्येक अवतारों में अपने नामानुसार शक्ति दिखाई है। दशावतार इस प्रकार हैं (१) मत्स्य (२) कूर्म (३) वराह (४) नरसिंह (५) वामन (६) परशुराम (७) राम (८) कृष्ण (९) बुद्ध (१०) कल्कि। इन दशावतार की कथाओं के गर्भ में जो रहस्य है वह विचारणीय है। पुराण कथायें वास्तव में अलंकार की ग्रन्थियां हैं। यदि हम अलंकार शून्य मूल स्वरूप में देखें, तो ज्ञात होगा कि विष्णु संबन्धी दशावतार विषयक कथायें सूर्य के दिनचर्या की विविध दशाओं तथा क्रियाओं का वर्णन मात्र है। एवं अवस्था तथा क्रिया को उद्देश कर एक रूपक के तौर पर वर्णन किया गया है।

§ (१) मत्स्य---आकाश रूपी समुद्र में डूब कर अदृष्ट अर्थात् अव्यक्त दशापन्न सूर्य-मत्स्य है ।

§ (२) कूर्म---कर पाद आदि का अंग का प्रसारण करने के लिये पूर्व की दशा से वह कूर्म रूप माना जाता है ।

§ (३) वराह---रात्रि रूपी प्रलय के आधीन हुई पृथ्वी को बाहर खैंचने वाला सूर्य वराह कहलाता है । सूर्य रूपी विष्णु वराह का रूप धारण कर के हिरण्याक्ष-अर्थात् पोह फटने पर स्वर्णमय प्रकाश को नष्ट कर देता है ।

§ (४) नरसिंह---रूपवाला वही सूर्य हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु सौवर्ण-शय्यासनको अपने पैरों से कुचल कर उससे सम्पूर्ण विजयी योधा की तरह प्रकट होता है । अर्थात् आरंभ में अपने मन्द प्रकाश से उदित हो कर एक सृष्टि को ही देखता है. इसी दृश्य को कवियोंने हिरण्याक्ष दैत्य की कल्पना कर उसको हनन करने वाले सुतराम् मन्द प्रकाश से पृथ्वी को मुक्ति दिलाने वाले सूर्य को वराह कहा है । एवं जब वही सूर्य हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु---दीप्ति मंडल रूपी सौवर्णी शय्या कि जिस में खुद घिरा हुवा है, उसको दूरकर अपने पैर पसारकर जगत् को दर्शन देता है तब वैसे विजयशाली व्यक्ति का पुराणकारों की ओर से नरसिंह नाम रक्खा जाता है । स्पष्ट शब्दों में करपादादि युक्त सूर्य नर-सिंह है । पूर्व का स्वरूप वराह है हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु

नामक किरणों को फेंक कर सूर्य पृथ्वी पर प्रकाश करने लगता है उसके पूर्व की दो दशाओं का यह दृश्य है। उन को भेद कर सूर्य प्रकाशित होता है। अतः उन दोनों दशाओं को दैत्य बनाकर पौराणिकोंने सूर्य की महिमा गाई है।

१५ वामन—पूर्णप्रभासे प्रकाशन होने के पूर्व सूर्य का बिंब बडा दीख पडता है, लेकिन अल्पकाल मे वह बिंब अल्प स्वरूप धारण करता है एवं प्रभातकालीन सूर्य प्रकाश प्रखरभी नहीं होता है इसीलिये यह निर्बल कहा जाता है कदमें बोनी परिणाम में निर्बल दीख पडते सूर्य का पुराण कारोंने वामन नाम दिया है, इस वामन स्वरूपमें अवतार हुवे विष्णु भगवान रूपी सूर्य बलि नामक दैत्य के दमन करनेवाले थे। वेदमें इन्द्रको बलिभिद कहा है। वैदिक दृष्टिसे इन्द्र व सूर्य में कोई भी भेद नहीं है इन्द्र सूर्य बल को हराकर नष्ट करता है वैसेही विष्णुरूपी सूर्य खुद वह पुराण कालीन बलि व वेदकालीन बलको हराकर पाताल में भेज देता है वेदकालीन कथा पुराण कालमें कैसी रूपान्तरित हुई है यह स्पष्टतया मालूम हो जाताहै विष्णुका स्वरूप वामन की तरह है अतः वे एकदम बलि अन्धकारकर नाश नहीं कर सकते इसीलिये वह नम्रतासे युक्तिपूर्वक अपना कार्य सिद्ध करलेना चाहते हैं बलि तीन पगभूमिकी याचना करते हैं एवं बलिभी स्वीकार करता है इस वरसे वामन रूप धारण किये हुये विष्णु-सूर्य भगवान अपना उग्र अस्ल स्वरूप धारण करके

पैर रखने लगते हैं. आखिर तीसरपैर के रखने की जगह न मिलनेसे बलि के सिर पर पैर रख उसको पाताल में भेज देता है एवंच वामन रूपी सूर्य उदित होकर आकाश के मध्यमें विराजितहो अस्त होनेतक तीन दशामुखोंमें रहकर अन्धकारको पाताल में बन्द कर देता है एवं वह उसके पीछे लगकर वह दैत्य अपना प्रभाव न बतलाये इसलिये उसके प्रासादका द्वारपाल बन जाता है।

§ ९ परशुराम-अब हम विष्णुके छठे अवतार के विषय में संक्षेपसे कुछकहेंगे। विष्णु के एक अंशका अर्थात एक कलाका अवतार माना जाता है वामन स्वरूपी विष्णु ने अंधकारका नाश करने पर सूर्यनामक विष्णु पृथ्वीपर अपने पैर रखने लगता है अतः पृथ्वीपर चलने वाले विष्णु को माता पिता होने चाहिये इसलिये वामनके पश्चातके सर्व अवतारों के माता पिता हैं बलिरूपी अन्धकार राक्षस को वामन स्वरूपी विष्णु पातालमें भेजकर अपने पाद पृथ्वीपर रखके आकाश में आरोहण करने लगता है एवं पृथ्वीके संबन्धसे मानव देह धारी बनाडालाहै वायु पुराण के अनुसार विष्णु सब देवोंका अधिपति इन्द्रको सौंपकर स्वय मनुष्योंमें प्रकठ हुवे थे इस प्रकार मनुष्य रूपको धारण करते हुये विष्णु-सूर्य का प्रथम अवतार परशुराम के नाम से विख्यात है सूर्य अपने वामन स्वरूपसे धीरे धीरे उग्र स्वरूप धारण करता है यह दृश्य देखकर हिंदु आर्योंने अति दूरके प्रदेशों को भेदन करने वाला परशुराम नाम दिया है

पुराण कथा के अनुसार परशुराम यह उग्र क्रोधी प्रकृति का था। उसके पिता का नाम जमदग्नि (भक्षक अग्नि) मा का नाम रेणुका था। वायु पुराण के उत्तरार्ध के ३५ वें अध्याय में कहा है कि वामन अवतार का फल दानवों को रसातल में पहुंचाना था। इस से क्रुद्ध हो कर उन्होनें अपने गुरु शुक्राचार्य को अपना दुःखजतलाया। वृष्टि, औषधि रस और वसु यह तीन भाग मेरे अंदर रहती है। अतः सो तुम्हारी ही है। ऐसा कह कर शुक्राचार्यने उस को आश्रय दिया, भृगु के पुत्र शुक्राचार्यने महादेव से असुरों को कल्याण कारक मंत्र मिलने का प्रयत्न किया, उस समय के बीच दानव देवों से पराजित हो कर नरुत्साही अवस्थामें थे। देव शुक्राचार्य का उक्त कृत्य देख कर कृद्ध हुवे व असुरों को तंग करने लगे शुक्राचार्य की माताने इन्द्र रहित जगत् बना दिया। विष्णुने भयभीत इन्द्र का समावेश अपने अन्दर कर लिया, इन्द्र की प्रेरणासे विष्णुने शुक्राचार्य की माता का वध किया, सामर्थ्यशाली भृगु यह देखकर क्रोधायमान हुवा। उसने विष्णु को सातबार जन्म धारण करने का शाप दिया यहां आकाश की क्रिया बन्द होती है। विष्णु को प्रथम परशुराम होना पडा। भृगुने विष्णु का सिर धारण किया। उसने देवों का सजीवन किया, पृथ्वी का जमदग्नि यह [illegible] का भृगु या शुक्राचार्य है। एवं परशुराम यह [illegible] के विष्णु का मनुष्यावतार है। अलंकार छोड़ कर [illegible] को [illegible] गर्भ में रहा [illegible] रहस्य मालूम

हो जावेगा। बादल और सूर्य के युद्ध का यह एक रूपक है। विष्णु-सूर्य ने शुक्र जल की माता=बादली का वध किया। तब शुक्रने महेश की सहायता से विष्णु=सूर्य को पृथ्वीपर भेज के पुनः अपनी माता=जलपूर्ण बदलियों को सजीवन कर दिया, विष्णु=सूर्य पृथ्वीपर परशुराम रूप से जन्मे। वहां भी उन को वही पराक्रम करना पड़ा, उसने अपने पिताकी आज्ञा से अपनी मा रेणु का वध किया। शुक्र अर्थात् जल इस की माता रेणु का=सूक्ष्म रेत है। जल रेत में रहता है, उसके प्राण, परशुराम रूपी विष्णु=सूर्यने पृथ्वी पर रहकर हर लिये। लेकिन भृगु वा शुक्राचार्य के पृथ्वीपर के प्रतिनिधी परशुराम के पिता जमदग्नि रूपी सूर्य वा इन्द्रने जल सिंचन कर उस को फिर सजीवन कर दिया। प्राणीमात्र की दृष्टि से गिरता जल एवं ताप के अन्योन्याश्रयता से उक्त प्रकार का दृश्य पुराणकारों की प्रज्वलन्त कल्पना का नमूना है। सहस्रार्जुन अर्थात् सहस्र किरण वाला सूर्य, परशुराम के पिता की अर्थात् जमदग्नि रूपी शुक्र की गौ (तेज) हर लिया था उससे नाराज होकर परशुराम रूपी सूर्य का जो उग्र स्वरूप वह अपने से प्रथम उत्पन्न हुवे सहस्र किरण वाले सूर्य का नाश कर, उसके स्थान पर स्वयं रह पृथ्वीपर निरंकुश घूमता है, इतनाही नहीं बल्कि वह आकाश के सर्व नक्षत्रों को अपने प्रचण्ड तापसे जला देता है। आकाश मे दीख पड़ते उक्त प्रकार के दृश्य को

पृथ्वीपर घटनेवाली घटना समझने पर विष्णु रूपी परशुराम अपने प्रथम स्वरूप सहस्रार्जुन रूपी राजाको मार कर अपना प्रभाव पृथ्वी पर स्थापित कर देता है, पृथ्वी को नक्षत्री अर्थात् क्षत्रिय विनाकी कर देता है। दूसरी प्रकार से परशुराम रूपी सूर्य अपनी प्रखर किरणों (परशु) द्वारा पृथ्वी को नक्षत्री अर्थात् जल रहित कर देता है। तथापि सूर्यका एक स्वरूप देर तक नहीं रह सकता। आकाश के पदार्थ एवं पार्थिव वस्तुवों पर एक दशा से दूसरी दशा में आनेका नियम लगा हुवा है। परशुराम भी इसी नियमसे अपनी उग्रता क्यों न छोड़े? सृष्टि मात्र उस से त्रस्त हो गई थी, तब उसे कोई छुड़ाने वाला चाहिये था, प्रखर सूर्य के स्थान पर सौम्य कांतिवाले राजा का आगमन हो तो यथार्थ प्रजापालन हो सकता है। इसी लिये राम का अवतार हुवा था।

७६ राम—यह राम विष्णु वा सूर्य का स्वरूप है, उसने उग्र परशुरामका तेज अपहरण कर अपना प्रभाव प्रकट किया था, आनन्द देवे, क्रीड़ा करावे वह राम प्रचण्ड ताप का शमन होने पर सूर्य का जो स्वरूप हुवा वही राम कहलाया, एवं उसकी सर्वेश्वरता स्थापन होने पर सृष्टि आल्हादित हो गई। राम रूपी सूर्य अपनी बाल्यावस्थामें परशुरामको हराता है, यह बात आकाशमें होने वाले रूपान्तरका रूपक हैं। रामकी पत्नी का नाम सीता था, सीता शब्द का अर्थ शुद्ध वा हलरेखा है, विष्णु की शक्ति श्री वा लक्ष्मी कहलाती है, वैसे ही राम

के साथ संलग्न शक्ति को सीता कहते हैं। जो कुछ निर्मल है वह कान्तिमान् है एवं कान्तिमत्त्व का तत्व दोनों स्त्रियों में समान है, सूर्य अर्थात् रामने अपनी आश्रितापत्नी द्युति वा सीता के साथ दक्षिणायन किया था, यह बात रामायणकी कथा के अनुसार रघुकुल भूषण रामचंद्रजी की दक्षिणाभिगमन की कथा से मिलती हुई है। रामने दक्षिण की तरफ प्रयाण करते समय गोदावरी तट पर पंचवटी में विश्राम किया था वह बात भी आकाश में सूर्य के साथ होने वाले दृश्य की सूचक है। सूर्य आकाश में चढ़ते चढ़ते केन्द्र स्थान पर पहुंच कर अपना मार्ग अयन के प्रकार के अनुसार वदलता है, एवं राम रूपी सूर्य भी वैसाही करे इस में आश्चर्य्य क्या है, रामकी शक्ति रूप सीता का रावणने अपहरण किया था तब रामने रावण पर चढ़ाई कर उसके प्राण लिये थे बल्कि सीता को प्राप्त कर विभीषण को लंका के सिंहासन पर बैठाया था यह कथा पूर्व कथित सूर्य के नरसिंह अवतारकी कथा का शब्दान्तर है ऐसा मालूम होता है, सूर्य की द्युति रूपिणी पत्नी को कैद कर तेजोमंडल रूपी हिरण्यकशिपु का नाश जिस प्रकार नरसिंह रूपी विष्णु भगवान् ने किया था तद्वत् वायु पुराण के अनुसार उसी हिरण्यकशिपु का अवतार रावण का विनाश राम रूपी सूर्य से हुआ है। अन्त में रामको सीताकी प्राप्ति हुई है, राम रूपी विष्णु वा सूर्य के पराक्रम का आद्य बिंब वेदसे भी मिलता है। उसका मारने वाला इन्द्र सूर्य वरुण विष्णु वगैरह

देवता है। वस्तुतः वैदिक देवताओं के नाम एकही अर्थ के सूचक हो कर विष्णु जो सूर्य है वह राम रूप से अहिका नाश न करे ऐसा पुराणकार न कर सके, तब उन्हों ने आकाश के अहिको महीके अहिका भाइबन्द बनाया। रामायण के अहिरावण व महिरावण ये दोनों भाई रावण के मामा माने गये हैं। राम को उन्होंने कैद किया था तब उनका नाश वायु पुत्र हनुमानकी सहायतासे रामने किया ऐसा उस कथा में लिखा है। मेघ के हटाने में वायु सूर्य का सहायक होताही है। रावण अर्थात् सूर्य प्रकाश से अनेक रंग वाला मेघ को राम रूपी सूर्य हनुमान रूपी वायुकी मददसे हरा कर, उस शत्रु से अपहृत हुई अपनी लक्ष्मी सीता को प्राप्त करता है यह रामकथा का रहस्य बतला कर इस अवतार संबन्धिनी कथा का ग्रीस देशीय कवि होमर कृत इलियड नामक महाकाव्य के साथ तुलना कर इस विषय को समाप्त करेंगे। एकही प्रकार के बीज से उत्पन्न हुवे वृक्षों में भूमि भेद होने पर भी कितने अंश में साम्य रहता है इस बातका उदाहरण हिंदुस्थान की रामायण की कथा तथा ग्रीस देशीय इलियड की कथा का आपस में अत्यधिक साम्य दृष्टिगोचर होगा, इन दो महाकाव्यों में कौन किस से उत्पन्न हुवा यह निश्चय से नहीं कह सकते तो भी, उक्त काव्योद्यानमेंसें विचरती हुई यह उभयान्तर्गत वृक्ष वल्लरी रूप नरनारियों की एक रूपता दृष्टिगोचर हो जाती है।

रामायण तथा इलियड—रामायण में जिस तरह राम की स्त्री सीता को रावण हरण करता है वैसे ही इलियड में मेनेलॉस की पत्नी हेलन का ट्रोजन नृपति प्रायम का पुत्र पॅरिस हरण करता है। इन दोनों स्त्रियों के पुनः प्राप्ति करने के लिये प्रयत्न दोनों कथाओं के उत्पादक बीज हैं। लंका में जिस प्रकार वहां की स्त्रियों से अनेक प्रकार के संकट सहन करने पड़ते हैं, उसी प्रकार हेलन को ट्रॉय नगर में अनेक प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। तो भी हेलन की न्याई पर पुरुष पर सीता मुग्ध न थी, अतः पातिव्रत्य की पवित्र मूर्ति अपनी भावना को दोष न दे कर केवल अपने पूर्व जन्म के कर्मों को सब दुःखों का मूल समझती है, जिस प्रकार युलीसीज़ पेनी लोपी के निमकहराम परिजनों को दण्ड देता है, उसी प्रकार लंका पर विजय प्राप्त करने के बाद हनुमान रावण नियुक्त सीता की परिचारिकाओंको दण्ड देना चाहता है, तब वह अपने भाग्य को दोष दे कर स्वामी की आज्ञा का अनुसरण करने वाली सीता अबलाओं को दण्ड देने की आज्ञा नहीं देती, एवं सीता व हेलन के अद्वितीय सौंदर्य ने वानर सेना तथा ट्रोजन वीरों को चकित कर दिया था। हेलन को हरण करने वाले पक्ष का रण में उतरने वाला योद्धा हेक्टर रणांगण में निष्ठुर लेकिन गृह जीवन में प्रेमी पति था। तद्वत् सीता का अपहारक रावण प्रचंड योद्धा एवं गृहजीवन में प्रेमार्द्र-हृदय का था। पतिप्रेमी ॲन्ड्रोमेकी जिस प्रकार हेक्टर को

रणप्रवेश करते देख जीवन की आशंका से अश्रुपूरित नयना हो जाती है, उसी प्रकार रावण की प्रणयिनी मन्दोदरी अपने पति को युद्ध में न जाने के लिये बहुत समझाती है। मन्दोदरी जब सीता को राम के पास भेजने के लिये रावण से कहती है, तब जिस प्रकार का रावण उत्तर देता है, उस प्रकार का ॲन्ड्रोमेकी को उत्तर देते हुवे हेक्टर भी कहता है कि प्रतिपक्षी के सामने युद्ध में न उतरने से कीर्ति न रहेगी एवं जगत् की दृष्टि में कलंकित हो जाऊंगा। हेक्टर की न्याईं युद्ध करते हुवे अन्त में अपने दुर्दैव की याद रावण को भी आई। तो भी उन दोनों वीरोंने युद्ध द्वारा मरण को ही अच्छा समझा। अन्त में हेक्टर की न्याईं रावण भी युद्ध क्षेत्र में मारा गया। जिस प्रकार हेक्टर की उत्तर क्रिया की गई तदनुसार रावण की उत्तर क्रिया राम की आज्ञा से की गई। इसके बाद पति पत्नी की प्रेम भावनायें, मर के भी कीर्ति प्राप्त करने की प्रबल इच्छायें, प्रचण्ड युद्ध के लिये उत्कट आह्वान, युद्ध करने के लिये की गई (सलाह) मंत्रणायें शूरोचित औदार्य दर्शक प्रसंग आदि तत्वों की शृंखला इतनी मनोहर इन दोनों काव्यों में दीख पड़ती है कि उनकी तुलना करना भी कठिन ही है।

८ § कृष्ण—रामावतार के पश्चात् विष्णुने कृष्ण का अवतार धारण किया। कृष्ण भी विष्णु अर्थात् सूर्य का एक अंश, कृष्ण के आलंकारिक भाषा में लिखे गये पृथ्वी विषयक वर्णनों का हम प्रथम निरीक्षण करेंगे। माथुर व शूरसेन प्रदेशों का

राजा शूरसेन था। उसका वसुदेव नामक पुत्र मथुरा के उग्र-सेन राजा की भतीजी देवकी से ब्याहा था, देवकी को दहेजमें रथ हाथी घोड़ा इत्यादि बहुत कुछ मिला था। इस वर बधु का रथ हांकने के लिये उग्रसेन की पवनरेखा नामकी स्त्रीको दुर्मिलिक नामका राक्षस जो पूर्व—जन्म का कालनेमि रूपसे रामावतार में हनुमान के हाथ से मारा गया था, उसका पुत्र कंस हाथ में लगाम ले के बैठा था। दहेजका सामान साथ ही था, इतने में आकाशवाणी हुई कि 'ऐ मूर्ख कंस यह देवकी का आठवां गर्भ पुत्र तेरा नाश करेगा,' फिर कंसने वसु-देव देवकी को कैद में डाल दिया, ज्यों ज्यों उनके पुत्र पैदा होते गये त्यों त्यों कंस उनका नाश करता गया, अन्त में विष्णुने अपनी योग माया चित् शक्ति को देवकी के उदर में सातवें गर्भ रूपमें शेषनाग को उस की सौत रोहिणी जो कि गोकुल की गुफाओं में छिपी हुई थी उसके गर्भ में ले जाने को कहा गया, इतनाही नहीं किन्तु स्वयं देवकी के उदर में आये। उस योगमाया को नन्द की स्त्री यशोदाके उदर में जन्म लेने को बाध्य किया। देवकी का गर्भ आकर्षित होकर रोहिणी में आया, उससे वह संकर्षण वा बलराम बलवाला राम अर्थात् आनन्द देने वाला कहलाया। विष्णुने फिर वसुदेव के अन्दर प्रवेश किया तब वसुदेव का स्वरूप सूर्य के समान कान्तिमान् हो गया। देवकी के गर्भ रहने पर वह भी अति तेजस्विनी बनगई। तब कंस को घबराहट पैदा हुई, फिर चन्द्र जब

रोहिणी नक्षत्र में आया, तब अन्धकारमयी घोर रजनी के मध्य-भाग में कृष्ण का जन्म हुवा। फिर कृष्ण तथा यशोदा की पुत्री की अदला बदली हो गई। जब कंस को विदित हुवा कि देवकी को आठवां सन्तान प्राप्त हुवा है, तब कारागृह में जाकर उस को मारने के वास्ते मांगा, देवकी बहुत रोई पीटी लेकिन उसने कुछ भी ख्याल न किया, तब विष्णु की माया को पछाड़ कर मारना चाहा, लेकिन वह हाथ से छूट गई और आकाश में उड़ कर जाते हुवे कह गई कि तेरे मारने वाले का जन्म हो गया है। एवं प्रभात काल में गोकुल के लोगों ने कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया, एवं ग्वालोंने कृष्ण का रक्षण करना शुरु कर दिया, कंसद्वारा भेजी हुई पूतना का कृष्ण ने दूध पीते वध किया, वह एक भयंकर चीत्कार कर के मर गई, उस भयंकर शव पर चढ़ कर कृष्ण खेलने लगे तथा यशोदा और रोहिणी उस बालक पर गो पुच्छ फिराने लगीं, पूतना के शव से सुगन्ध निकलते देख सब लोग आश्चर्यचकित हो गये, पूतना को मुक्ति मिली, फिर कृष्णने शकरासुर को मारा तृणावर्त को भी पछाड़ा, भागवत में लिखा है कि युग युग में अवतार धारण करने वाले के मूलतः तीन रंग होते हैं, जैसे श्वेत कृष्ण व पित्त, लेकिन कृष्णावतार में विष्णु का रंग श्याम था, इस लिये वह कृष्ण कहलाया। यशोदाने अपने गोदमें लेकर उनको दूध पिलाया था, लेकिन चूल्हे पर रक्खे हुवे दूध को उफनता देख उनको दूर रख दिया तब क्रुद्ध हो कर वह

दधि पात्र तोड़ कर पीछे छुप गये थे। यशोदाने उन को जहां तहां से ढूंढ कर रस्सी से बांधा था व वे बंध गये थे, तदनुसार वारुणी पी के मस्त हुवे लक्ष्मी के मद से अन्ध यमलार्जुन-नल कुबेर तथा मणिग्रीव का वध कर के उनको मोक्ष का अधिकारी बनाया था फिर वत्सासुर, बकासुर, अघा-सुर आदि को भी मारा था। एवं गोवर्धन पर्वत को उठा कर इन्द्रके कोपसे गोकुल की रक्षा की थी, गोपालोंको वैकुण्ठ का दर्शन कराया था, गोपियों के साथ रास क्रीड़ा करके वे अदृश्य हो गये थे गोपियां विरह व्याकुल हो गई तब कृष्णने उनको अपना दर्शन दे आलिंगन भी किया था। यमुना तट पर रासक्रीडा करके जलक्रीडा भी की थी, यमुना के जलमें उनके साथ क्रीड़ा करने वाली युवति गोपियोंने उनको घेर कर उनकी सेवा करने लगी एवं कृष्ण भी यमुना के जल स्थलमें शरद ऋतुकी चन्द्र ज्योत्स्ना में उनके साथ विहार कर रहे थे, फिर कृष्ण जी मथुरा में आये, वहां कुब्जाका उद्धार किया, फिर कुवलयापीड हाथी को मार एवं मामा कंस का वध कर उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाया था, फिर उद्धवको भेज कर नन्द यशोदा एवं विरह व्याकुल वृन्दावन की गोपियों को सांत्वना दी थी, फिर काल-यवन का नाश कर मथुरा से द्वारका चले गये थे, फिर रुक्मि-णीका हरण कर उससे विवाह किया था, गृहस्थाश्रममें प्रद्युम्न नाम का पुत्र उत्पन्न हुवा। नरकासुर का वध कर के राजकन्या-

ओं से विवाह किया तथा कुब्जा रूक्मिणी को मनाया था। फिर बाणासुर के साथ युद्ध कर उस को बगर हाथ पैर का कर दिया था, फिर गोकुल जाकर गोपियों से विहार किया था, पाण्डव कौरवों के युद्ध में भी भाग लिया था, जब यादव मात्र का संहार अन्तमें हो गया तब जरा नामक व्याध से विद्ध हो कर वैकुंठ धाम पधार गये थे, अब तुलनात्मक दृष्टि से ग्रीस देशीय कथा का निरीक्षण करेंगे।

ग्रीस देशीय देवपिता क्रोनस के विषयमें हम पहिले कह चुके हैं, क्रोनस का समानार्थ संस्कृत शब्द क्रतु है, क्रतुका अर्थ यज्ञ आषाढ मास वगैरह होता है, क्रोनसका अर्थ काल भी है। ग्रीस देशीय कथानुसार क्रोनस को अपने माता पितासे यह सूचना मिली थी कि उसकी छठवीं संन्तान उसे पदभ्रष्ट कर देगा, इस लिये उसने सब बालकों को निगल जाने का विचार किया था लेकिन उसके छठे बालक को छिपा कर उस के स्थानपर कंकर पत्थर भर दिये थे, वह इसको ही सत्य मान कर फंस गया, अन्तमें छठे सन्तान ज्युपिटर ने उसका ध्वंस किया। अब कृष्ण की कथा पर विचार करनेसे मालूम होगा कि ज्युपिटर के जन्मसे जो दशा क्रोनसकी हुई वही कृष्ण के जन्मसे कंस की हुई थी, क्रोनस यही कालनेमि वा कंस था। कृष्णही ज्युपिटर द्योष्पितर वा विष्णु वा सूर्य है, सर्व सृष्ट्युत्पादक पिता के सामने कालका कुछ भी नहीं चलता यह इससे सिद्ध होता है। अलंकार को दूर कर

मूलतः कृष्णकी कथाकी हम पड़ताल करेंगे, अभेद बाद अव-तार का उत्पादक है—काल व कल्पना के बलसे पौराणिक कथाओं में पैदा हुए भेद को वह दूर कर सकता है। एक ही भाव को अनेक शब्दोंसे कथन करने पर अनेक कथाओं की उत्पत्ति हो जाती है। सब में ओत प्रोत रहे हुवे सूत्र को ढूंढ निकालने से सर्व संशयों का नाश होकर यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। कृष्ण संबन्धी कथा जाल अनेक तरह के जाल समस्याओं से भरी हुई है। कृष्ण विष्णुका व सूर्य का मनुष्यावतार है वह आदित्य होने से अदितिका पुत्र है, वायु पुराण के अनुसार कृष्ण की माता देवकी अदिति ही हैं। उसका वसुदेव कश्यप है। पूर्व काल में आकाश के देवों के पिता माता अदिति व कश्यप थे, जब देवों के मनुष्यावतार होने लगे तब उनके मां बाप भी पृथ्वी के निवासी होही गये, कृष्णावतार में वह वसुदेव देवकी के नामसे हुए। कश्यप जिस प्रकार मरीचि सूर्य का अवतार सूर्य रूपही है, तथैव वसुदेव भी सूर्यरूप है। आठ प्रकारके वसु तथा चित् तथा सब देव में वसु इनमें जो रहे वह वसुदेव। इस वसुदेवकी जो द्युति वा शक्ति वह उसकी वल्लभा वह देवकी है कंस हिरण्यकशिपु के वंशज कालनेमिका अवतार है, अतएव वह दैत्य अर्थात दिति पुत्र है। प्रत्येक अवतार में हन्ता और हत नवीन नवीन नाम धारण किया करता है, कृष्ण रूपी सूर्य राम रूपी सूर्य के पश्चात् जन्म लेता है, कृष्णका बड़ा भाई बलराम एक अंशावतार

है, सूर्य अपने वामन स्वरूप से राम स्वरूपमें परिणत हो, उसके बीचका संक्रांत स्वरूप जैसे परशुराम है, बलयुक्त आनन्द देने वाला ऐसा बलरामका अर्थ होने से आनन्द के साथ उग्रता भी है, परशुराम अति उग्र राम उससे कम बलराम उससे कम एवं कृष्ण बहुत ही कम उग्र होकर सृष्टि को अत्यन्त प्यारे हैं, कृष्ण के जन्म के पूर्व कंस वसुदेव देवकी के छ सन्तानों को मार डालता है, यह कथा भी अर्थ सूचक है। परशुराम के अवतार को छोड़ कर सूर्य के मत्स्य से लेकर राम तक जो छ स्वरूप नष्ट होते हैं उनको देवकी के सन्तान बनाया हो, ऐसा साफ साफ मालूम पड़ता है। प्रत्येक युगमें अवतार लेने वाले विष्णु के श्वेत श्याम व पीत ऐसे तीन रंग माने गये हैं, यह बात भी सूर्य की एक दिवस में होने वाली तीन अवस्थाओं से मिलती है, प्रातःकाल के सूर्य का प्रकाश श्वेत मध्यान्ह का उग्र वा श्यामल व सायंकाल का पीत। कृष्ण रूपी सूर्य श्यामल है क्यों कि वह सायंकाल स पहिले सूर्य है। वह विनम्र हो कर सृष्टि मात्रका सखा है, वह कोमल व प्रेमास्पद माना गया है, अब हम आकाश के कृष्ण को दूसरी तरह देखेंगे, कृष्णका अवतार दक्षिणायन का सूर्य हुए बाद अर्थात् वर्षाऋतु बैठने पर श्रावण मासकी उतरती कला में हुवा था। वर्षा के आरंभमें अर्थात् आषाढ मास में विष्णु सूर्य सदा सोया हुवा रहता है, अर्थात् मेघाच्छादित होकर लोक मात्र को अदृश्य रहता है, फिर श्रावण मास में वह कृष्ण रूप

से प्रकट होता है। जन्माष्टमीकी रात यह मेघादिसे आच्छादित करने वाली आषाढ मासकी रात एवं श्रावण वदि नवमीका उत्सवानन्द युक्त प्रभात किंवा सूर्योदय के पश्चात् का समय यह गोकुल=किरण कलापमें विराजित सूर्य की दशा का होना संभावित है। वर्षाऋतु के गाढ अंधकारमें कृष्ण सूर्य का जन्म होने से उसकी कान्ति शुद्ध गौर वर्ण की नहीं हो सकती, अतएव उसकी श्वेतता में जितनी न्यूनता उतनी ही श्यामता माननी पड़ती है, एवं दैनिक दृष्टिसे देखने पर भी यही मालुम पड़ता है कि उदीयमान वा उदिष्यमान सूर्य के बराबर सायंकालीन सूर्य तेजस्वी नहीं होता अस्त के पहिले के सूर्य का नाम कृष्ण व श्यामल कहा है। कान्तिमान् राम के पश्चात् बलराम व कृष्णका जन्म होता है, वह अस्त होने वाले सूर्य के स्वरूपों का निदर्शक है।

कंसने वसुदेव देवकी को कारागृह में रखवाया यह बात केवल सूर्य वा उसकी कान्ता के अन्धकार ग्रस्त दशाका सूचन करने वाली है, एवं कृष्णका उस दशा में हुवा जन्म यह सूर्य का वहां होना बतलाता है, जन्म के पश्चात् कृष्णको गोकुल में ले जाने के समय यमुना वा कालिन्दी स्थान दे देती है, फिर गोकुल में रह कर वह बड़ा होता है। इसबात के गर्भ में छुपा हुवा रहस्य इस प्रकार है कि कृष्ण रूपी सूर्य को यम व अंधकार रूपी कालका प्रदेश =प्रवाह उदय होने के लिये उसको मार्ग दे देता है, फिर वह

—गोकुल—किरण समूह में रह कर बढ़ता रहता है, रात्रि के पश्चात् होने वाला सूर्योदय की उक्त कथा एक रूपक ग्रन्थि हो ऐसा प्रतीत होता है। कालिनेमि के अवतार रूप को कृष्ण के जन्म की खबर लगते ही वह बालिनी पुत्री पूतना रूपिणी अंधकार करती हुई बदली को अपनी दूती बनाकर कृष्ण रूपी सूर्य को ढूंढ कर मारने के लिये अर्थात् लोक दृष्टिसे दूर करने के लिये प्रेरित करती है। परंतु वह कृष्ण रूपी बालक पूतना रूपिणी बदली को चूस कर मार डालता है, एवं उसका प्राणहीन—जलहीन व्रज शरीर किरणावलिनी सब दिशाओं में अपने हाथ पैर फैलाकर छिन्न भिन्न हो कर मर जाती है, तब यशोदा=यश देने वाली कान्ति व बलरामकी माता रोहिणी जो वसुदेव की पत्नी है वे दोनों बाल सूर्य रूपी कृष्ण पर गो पुच्छ किरणों के चंवर फिराने लगती हैं—अर्थात् सूर्य के बिंबसे किरणे फूटने लगती हैं, एव कृष्ण रूपी सूर्य पूतना रूपी बदली पर विलास करने अर्थात् प्रकाश करने लगता है।
फिर उसे शकटासुर—रोहिणी=रक्तवर्ण की गो बदली का नाश किया यह शकट हिरण्याक्ष के कुल का था। नरसिंह अवतार के हिरण्याक्ष वध एवं शकट वध की कथा में साम्य है, ऐसा कहा जा सकता है इतनाही नहीं किन्तु उदीयमान सूर्य के स्वरूपान्तर के दृश्य की रूपक ग्रन्थि रूप यह कथा है। यशोदा की गोद में बैठे हुवे कृष्ण का भार बढते हुवे जब असह्य हो गया तब माताने उसको जमीन पर रख दिया

इतने में ही तृणावर्त दैत्य उसको उठा कर आकाश में चढ गया। लेकिन कृष्णने गलेसे ऐसा पकड़ रक्खा कि अन्तमें वह शववत् कृष्ण के साथ व्रज में गिर पड़ा इस से विरह व्याकुल गोपिकाओंने कृष्ण को उठा कर यशोदाके सिपुर्द कर दिया। यह कथा भी रूपक है यशोदा का अंक यह सूर्य के आसपास का तेजोमंडल है उस तेजोमंडलसे उड़ कर वह सूर्य तृणावर्त (तृणशय्या रूप चमकते हुवे मेघ) से घिर जाता है लेकिन-अन्तमें वह दैत्य व्रज–किरण समूह में गिर कर उस में ही समा जाता है। गोपिकाएं अर्थात् छोटी छोटी किरणें उसको संभाल कर फिर यशोदा को सौंप देते हैं अर्थात् सूर्य कान्तियुक्त हो जाता है। यह तृणावर्तकी कथा नरसिंह अवतार हुवे हिरण्यकशिपु के वध की कथाका स्मरण कराती है। यशोदा ने जो रस्सी से बांधा था वह रस्सी सूर्य की किरण हैं, गोवर्धन पर्वत उठाकर–अर्थात् अपने किरणों की वृद्धि कर इन्द्रके कोपसे अर्थात चढे हुवे बदलों से अपने प्रिय गो–किरण कुलसमूह की रक्षा की थी फिर यमुना के तट पर व उस के जलमें इन्होंने रासलीला जल लीला आदि गोपियों के साथ की थी, फिर वे अदृष्य हो गये थे विरह व्याकुल गोपियों को दर्शन तथा आलिंगन किया था, इस अलंकार का यह अर्थ है यमुना–अंधकार ग्रस्त आकाश का रवि प्रवास मार्ग उसके तटपर–अर्थात् क्षितिज पर या उस मार्ग रूपी नदीमें विचरते हुवे कृष्ण=सूर्य अपनी गोपी= किरण वालियों के साथ विलास करता है। ऐसा करते हुवे वह

अदृश्य हो जाता है, अर्थात् लोकदृष्टि में दीखता सूर्य का स्वरूप बंद हो जाता है, और केवल उसके किरणही दीख पड़ते हैं। उन किरणों से उसका वियोग हुवा हो ऐसा भास होता है। इस पर से इस दृष्य को पुराणकारों ने कृष्ण तथा गोपियों का वियोग विरह रूप से कल्पना की है, और कृष्ण ने यमुना के गहरे से गहरे जल में रहते हुवे कालिय नाग को वश में किया था, इस कथा का यह तात्पर्य मालूम होता है कि—सूर्य यमुना रूपी अपने अन्धकारमय प्रवास मार्ग के अति गंभीर स्थान पर रहे हुवे कालिय नाग रूपी सर्व भक्षी काल को वेध कर के अर्थात् अपने वश में कर अपना पैर उस पर रख अपना विजय उसपर प्रगट करता है। फिर कृष्ण रूपी सूर्य कुब्जा का उद्धार करता है, सीधे मार्ग को सूर्यग्रहण करता है, उसके अपने मामा कंस का वध कर उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाता है। रामजिस तरह रावण का वध कर सीता को प्राप्त करता है, उसी तरह कृष्ण रूपी सूर्य काल यवन रूपी रावण का वध कर रुक्मिणी के साथ शादी करता है, द्वारिकामें रह कर अर्थात् पश्चिम दिशामें रह कर गृहस्थाश्रमका उपभोग करता है, इधर कृष्ण गोकुलमें जा कर गोपियों के साथ जा कर विहार करता है, अर्थात् अस्तंगत सूर्य अपनी कोमल किरणों से मानो विलास कर रहा है अन्त में अन्धकार तथा प्रकाश कौरव पाण्डव के युद्ध में भाग लेकर कृष्ण-सूर्य भी इन सब का संहार होने के बाद अर्थात् सन्ध्या समय में जरा नामक बहे-

लिया अर्थात् अपने ही वृद्ध किरण—कर से विद्ध होकर वैकुण्ठ जाता है—रूपान्तर को प्राप्त होता है।

(९) § बुद्ध—कृष्ण रूपी सूर्य का स्वरूप अवस्थान्तर को प्राप्त होते हुवे बुद्ध का स्वरूप धारण करता है, विष्णु अपने नववें अवतार में बुद्ध का शरीर धारण करता है। बुद्ध शब्द का अर्थ, जात, जाना हुवा वा प्राज्ञ पुरुष होता है, भागवत् में लिखा है तदनुसार दैत्यों की मति को मोहित करने वाले बुद्ध का वेष धारण कर विष्णु उन देव शत्रुओं को पाखण्ड मार्ग का उपदेश करेगा, यह कथा अस्तंगत सूर्य का वर्णन करनेवाली है, अस्तकाल के सूर्य को प्राणी मात्र देख सकते हैं इसी लिये उसे बुद्ध कहते हैं वह बुद्धिमान् है वह अपने पहिले सूर्य की तरह किसी को नहीं मारता एवं शान्त है वह दैत्योंकी मति को लुभानेवाला वेश धारण करता है, यह बात सूर्यास्तकी मोहकता सूचित करता है। दैत्य—अंधकारादिके राक्षस सूर्यकी मोहक दशा देख कर अपनी प्रभुता दिखाने को बाहर आते हैं। अर्थात् रातका काला पड़दा पृथ्वी पर उतर पड़ता है। विष्णु वा सूर्य रूपी बुद्ध इस प्रकार असत्य मार्ग पर दैत्यों को ले जाता है, अर्थात् रात हो जाती है क्रिया बन्द हो जाती है, ब्राह्मण लोग धर्म क्रिया प्रातःकाल बन्द रखते हैं, राजा लोग भी प्रजा पालनार्थ बन्द रख सो जाते हैं। अहल्या=विभावरी की गोद में बुद्ध पलित होता है। उसके पिता का नाम गौतम=आकाश अंधकार है।

गौतम बुद्धने यज्ञादि धर्म के नाम पर होने वाली क्रियाओं का बन्द करने का उपदेश किया था, बुद्ध रूपी सूर्य का राज्य होने पर अर्थात् रात्रि का समय होने पर यज्ञादि धर्म कार्य बन्द हो जाते हैं।

§ १० कल्कि—विष्णु का दसवां अवतार कल्कि कहा जाता है-इस अवतार में विष्णु जगत् का पालन करता है, अर्थात् रात्रि के अन्धकार में डूबे हुवे जगत् को विष्णु रूपी सूर्य उदित हो कर फिर प्रकाशित करेगा। उपर्लिखित विष्णु के दस अवतारोंको हम पढ़ चुके हैं इन दश अवतारों का सार यही है कि गगन मण्डल में सूर्य उदय से अस्त तक नव भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करता है। वे नव दृश्य, लोक कल्पना तथा दृष्टि से भिन्न भिन्न कार्य करने वाले हैं, हिन्दु आर्यों में सूर्य का कितना महात्म्य है यह उक्त प्रकार की कथा वल्लरी से तथा गायत्री मंत्र को देखते हुवे मालूम पड़ता है। शायद किसी साधारणतया देखने वाले वाचकको सब कल्पना कुसुम मालूम हो किन्तु उनको उनके सच्चे स्वरूप में समझने से हिन्दु आर्योंने समयानुकूल वेष अपनी धर्म भावनाओं को पहनाकर अपने असली धर्मविचार का किस तरह पालन किया है यह उक्त कथा का स्फोटन करनेसे पता लगता है। हिन्दू आर्य एकेश्वर वादी हैं इस एकेश्वर को उन्होंने ब्रह्म हिरण्यगर्भ आदि नाम दिये हैं। उस में स्थित शक्तियों का भी गुणकर्मानुसार नाम रक्खा है, विविध शब्दों के अन्दर के अर्थ देखते हैं तो सब की एकार्थता अन्त में

दीख पड़ती है। प्रकृति व पुरुष का संबन्ध अभेद्य है। लेकिन वे अनेक देव देवी रूप से नाम धारण करें तो एक के अनेक देवी देव नहीं हो जाते। हिन्दु आर्यों को वैदिक विचार की भावना से पालन करने को प्रेरित किया है। इसी लिये उन्होंने उक्त प्रकार की कथाओं को विविध शब्दावालियों मे गूंथा है। वेद कालीन देव शत्रु वृत्र अहि बल आदि पौराणिक युग में बलि हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु कालनेमि रावण आदि रूप से कहे गये हैं। एवं एक ही अर्थ में कहे गये इन्द्र वरुण सूर्य विष्णु आदि वैदिक देव पुराण कथाओं में भिन्न भिन्न गिने गये हैं। तथापि अवतार वाद अभेद का उत्पादक हो कर वह सर्वदा देव दानवों को उन के मूल स्वरूप में एक ही समझने से अपनी दृष्टि में अभेद माना जा सकता है।

अब हम कृष्ण की पात्रता का कोई यूरोपीय पात्र ढूंढेंगे। यूरोपीय पुराण कथाओं में एपोलो नामक सूर्य देव अपनी पात्रता विविध प्रकार से प्रदर्शित करता है उसी प्रकार हिन्दु पुराणों में कृष्ण अपने विविध विलास दिखाता है। एपोलो बन्सी बजाने में कुशल था, एवं कृष्ण को भी संगीत अति प्रिय था। वह मोहन मुरली बजा कर गोपियों के चित्त चुरा लेता था, एपोलो ज्युपिटर का पुत्र था, उसी तरह कृष्ण भी हिन्दु आर्यों के द्यौष्पितर (तेजस्वी पिता) वसुदेव (सूर्य) का पुत्र था। वनविहार दोनों को प्रिय था, कृष्णने जिस प्रकार कालिया को नाथा था, उसी तरह एपोलोने भी लोक

मात्र को भय देने वाले पाइथॉन नामक सर्प का वध किया था। दोनों ही ने गोप जीवन व्यतीत किया था।

इस प्रकार विष्णु जो कि सूर्य्य है उसके दस अवतारों के चारित्रों का इतिहास पूरा होता है। जैसे वेद में देव की शक्ति को योषा कहा है, पुराणों में भी वैसी कल्पना की गई है पौराणिक ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों की जो जो शक्ति उन उनकी पत्नी रूप गिनी गई हैं, और इस प्रकार विष्णु की पत्नी लक्ष्मी या श्री के नाम को पाती है। यह लक्ष्मी विष्णु को देव दानवों द्वारा मंथन की हुई क्षीरसागर में से प्राप्त हुई थी। ब्रह्मा वह विष्णु वल्लभा सर्वदा विष्णु के हृदय में ही वास कर रही है। विष्णु रूपी सूर्य की द्युति उस के साथ हमेशा संलग्न रहती है। वह पृथ्वी मात्र को पुष्टि तुष्टि आदि सुखकारक सामग्री दे कर उनका पालन पोषण कर सकती है। पृथ्वी का पालन सूर्य से होता है, अतएव वह सूर्य विष्णु=रक्षक पालक देव माना गया है विष्णु शेषशायी भगवान् है, अर्थात् वह देव अपनी सहस्र किरणों में शयन कर उन के द्वारा सब जगत् को सुरक्षित रखता है, ग्रीक झ्युस की पत्नी हीरा तथा रोमन ज्युपिटर की स्त्री जुनो की माफक विष्णु की प्रियतमा लक्ष्मी, हीरा वा श्री भी इर्ष्यालु हो ऐसा भी विष्णु की अनसूया के पास हुई दशा से मालूम पड़ता है। झ्युसपिटर एवं विष्णु को गरुड प्रिय था, झ्युस एवं हीरा की शादी ग्रीक प्रजा में आदर्श रूप मानी जाती है उसी

प्रकार विष्णु का बाल कृष्ण रूप से तुलसी के साथ का विवाह आज तक हिन्दू आर्यों में आदर्श विवाह माना जाता है, इतना ही नहीं बल्कि प्रत्येक हिन्दु गृह जीवन में विष्णु की पालकता पितृ भाव में तथा लक्ष्मी का वैभव मातृत्व में प्रतिबिंबित होता है, ऐसा समझ कर स्त्री मात्र को गृह की श्रीलक्ष्मी रूप माना गया है। एवं स्त्रियों के नाम के अन्त में लक्ष्मी शब्द संज्ञावाचक लगाने का सम्प्रदाय हिन्दु आर्यों के नागरिक वंशजों में आजतक देखा जाता है।

२८ चंद्र--वेद काल में जिस को सोम कहते हैं उसी को पुराणकाल में चन्द्र कहते हैं। इस चन्द्र के पिता अत्रि (सर्वे-मर्क्षा) मुनि थे। माता का नाम अनसूया था, तप करते हुवे वे अत्रि (सप्तर्षियों में से एक) ऋषि की देह अमृतमय बन गई, तथा दोनों नेत्रों से अमृत झरने लगा इस अमृत रूपी गर्भ को ब्रह्मा के कथन से दश देवियोंने धारण किया, लेकिन धारण करने में असमर्थ हुई तब वह शीत रश्मि गर्भ पृथ्वी में जा पड़ा। इस प्रकार गिरते देख ब्रह्माने उस को एक हजार अश्व-वाले देवमय रथ में बैठाया, उस रथ में बैठ कर उसने पृथ्वी की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की, उसका तेज पृथ्वी को प्राप्त हुवा, उसके परिणाम में औषधियां उत्पन्न हुई, फिर दक्ष प्रजापतिने अपनी सत्ताईस लडकियां व्याह दी। यह लड़कियां सत्ताईस नक्षत्र हैं। इस प्रकार दुष्प्राप्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर भ्रान्त बुद्धि का हो कर चंद्र अविनीत हो गया तथा अन्त में मारा भी

गया। उसने अंगिरसों की अवहेलना कर के बृहस्पति की तारा नामक यशस्वी स्त्री का अपहरण किया, तथा अनेक बार नम्रता पूर्वक याचना करने पर भी तारा को वापस नहीं दिया; आखिर रुद्र ने युद्ध कर तारा बृहस्पति के स्वाधीन कर दी। चन्द्र मुखी तारा को बृहस्पतिने गर्भवती देख कर यह कहा कि तू गर्भ को क्यों नहीं छोड़ती, तब ताराने बुध नामक चन्द्र के पुत्र को जन्म दिया। इस बुध से इडा (पृथ्वी) जो मैत्रा वरुणी अर्थात् मित्र तथा वरुण की पुत्री कहलाती है, उसने पुरूरवा नामक पुत्र को उत्पन्न किया, यही पुरूरवा उर्वशी का प्रियतम था, और उसे इस से छ पुत्र उत्पन्न हुवे थे। बलात्कार से तारा को ग्रहण करने से वह शापित हो क्षय रोग के आधीन हुवा, तब उसने अत्रि के आधीन हो कर अपने रोग का निवारण करवाया, उस दिन से वह कान्तियुक्त हो गया। औषधि पति भी चन्द्र का नाम है। सोमवल्ली तो उस की अत्यन्त प्रिया है। चन्द्र का कटिवस्त्र लाल अंगवस्त्र नीला व कुछ पीला, उस के मुख पर अर्धचन्द्राकार जो भास दीख पडता है वह चांदी की न्याई श्वेत है, इसके रथ को एक हरण जुता हुवा है एवं उस की लाल ध्वजा पर शशक है। ग्रीस देश का डायोनीसस चन्द्र देव की प्रतिकृति है। ये दोनों देव वनस्पति मात्र के पति माने जाते हैं। ग्रीक तथा रोमन आर्य डायोनीससको बेकस के नाम से पहिचानते हैं। बेकस अर्थात् उद्घोष पूर्वक पूजा जाने वाला देव। वेद काल में सोम की स्तुति उत्साह पूर्वक की जाती थी,

क्यों कि सोम पान बल प्रद माना जाता था, इससे मालूम होता है कि ग्रीक रोमन तथा हिन्दू आर्योंकी सोम के लिये एक प्रकारकी भावना थी, किन्तु ग्रीक तथा रोमन आर्योंने मूल भावना का पालन किया एवं बेकस के नामसे उसकी भावना की पूजा कर नाम बढाया है। हिन्दू आर्य गरम प्रदेशमें आबसे इस लिये उन्होंने सोम पान छोड़ दिया, परिणाम में सोमवल्लरी आदि के अधिष्ठाता देव सोम--चन्द्र की उपासना शुरु करदी, ग्रीक व रोमन प्रजाने चन्द्र ज्योत्स्ना को देवीरूप कल्पना कर डायना वा आर्टेमिस नाम देकर देव सृष्टि में स्थान दे दिया। भारतीय पुराणों में चंद्रमा नरजाति है युरोपमें उसकी कल्पना नारीजाति है। हिन्दू आर्योंने पुराण कालमें चंद्र को मृगलांछन आदि नाम दिये हैं। वहां डायनाको मृगयानुरागिणी बताकर मृगादि पशुओं को प्रिय मानने वाली माना है। दोनों कथाओंके अंदर के साधारण तत्वको तलाश करने से मालूम होता है कि ग्रीक तथा हिन्दू आर्योंकी चन्द्र संबंधी भावना आदि कालमें एक समय एक ही प्रकारकी रही होगी। रोमन प्रजाकी आर्टेमिस (चन्द्रकी अधिष्ठात्री देवी) हिन्दू पुराणोंमें चन्द्रलेखा वा शशिकला रूपसे दृष्टिगोचर होती है। आर्टेमिस जिसका संबन्ध अर्धेन्दु के साथ दिखाया जाता है उसको हिन्दुओंकी चन्द्रलेखाकी ग्रीक प्रतिकृति रूप गिनें तो कुछभी अनुचित नहीं एवंच ग्रीक आर्टेमिस व रोमन डायना ये दोनों चन्द्रकी प्रतिकृति हिन्दु पुराणोंमें हो ऐसा नहीं कह सकते।

(२१) उषा—प्रभात की अधिष्ठात्री देवी उषा है, वेदमें इसका उर्वशी रूपसे वर्णन मिलता है, उर्वशी की व्युत्पत्ति उरु=विशाल अस=व्याप्त होना इसके सिवाय उषाको वेदमें लगाये हुवे विशेषण तथा तदुद्देश्यक वाक्य भी उर्वशी शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हैं, (उर्विया विभाति) (वरीयसी) वगैरह उषाविषयक शब्द उर्वशी व उषाकी एकता बताने के सबन्धमें पर्याप्त हैं, उषा जिस प्रकार सूर्य की वल्लभा थी तथैव पुरुरवा की प्रियतमा भी है, यह पुरुरवा सूर्य ही है, उसीका नाम वसिष्ठ भी है। देवसृष्टि में जब उर्वशी थी तब मित्र व वरुणसे उत्पन्न हुवे पुत्र थे, अवतार वाद की अभेद दृष्टिसे मित्र वरुण वसिष्ठ और पुरुरवा को सूर्य मानकर उषा वा उर्वशी को उसकी वल्लभा मानें तो कुछ हानि नहिं। मानव सृष्टि में पुरुरवा की उर्वशी प्रियतमा थी, इसी लिए हम उसे प्रेमलीलाकी कथाका सूर्य उषा के संबन्ध दर्शक रूपक मान सकते हैं। भागवत में पुरुरवा को मूर्तिमान कामदेव व उर्वशी को स्त्री रत्न कहा है, तब कामदेव रतिकी कथाको सूर्य व उसकी योषा उषाकी प्रतिकृति मान सकते हैं। सूर्य=विष्णुने कृष्णका अवतार धारण किया। जिस प्रकार हिरण्यगर्भ में इराज की उत्पत्ति पहिले बतलाई उसी तरह पौराणिक काल में हिरण्य-गर्भ रूप श्रीकृष्ण उनकी कान्ति रूपिणी कान्ता रुक्मिणी से कामदेव का अवतार प्रद्युम्न पुत्र पैदा हुवा था। इराज कामदेव प्रद्युम्न ये तीनों शब्द एकार्थ वाचक हैं। कृष्णके पुत्र प्रद्युम्न

को बाल्यावस्था में शंबरासुर ने ले जा कर समुद्रमें डाल दिया था, किन्तु भाग्यवश शंबर की दासी मायावती के हाथ वह आ लगा, वहां से वह रुक्मिणी को प्राप्त हुवा यह कथा भी एक रूपक है, जो इस प्रकार स्पष्ट होती है। कृष्ण सूर्य है एवं प्रद्युम्न भी सूर्य है। इसको बाल्य काल में शंबर मेघ उठा कर समुद्र अर्थात् आकाश में डुबो देता है, लेकिन शंबर की दासी मायावती, अर्थात् मेघ के प्रभाव से अपने गौरव को खोई हुई द्योतना उसकी रक्षा कर अपनी विद्या उसे सिखाती है. अर्थात् वह कृष्ण पुत्र द्योतना की सहायता प्राप्त करता है अन्तमें प्रद्युम्न रूपी सूर्य अपनी कान्ति रूपिणी कान्तासे शंबर-मेघका विदारण करता है, मायावती रति, तथा प्रद्युम्न कामदेव के अवतार थे ये दोनों उषा व सूर्य की प्रतिकृति मात्र हैं, ऐसा कहा जा सकता है। प्रद्युम्न फिर रुक्मि=तेजस्वी की पुत्री रुक्मवती=प्रभाव वाली से शादी हुई, उस से उसको अनिरुद्ध =अप्रतिहत गति वाला पुत्र उत्पन्न हुवा, एवं अनिरुद्ध सूर्य रूप है, उसने वेद कालीन बल व पुराणकालीन बलिके पुत्र बाण की कन्या उषा से पिता की इच्छा विरुद्ध शादी की थी, इस प्रकार वेदकालीन सूर्य तथा उषा की कथा पौराणिक काल में नवीन स्वरूपमें दीख पडती है। बाणबलिका अर्थात् वेदकालीन बल अन्धकार का पुत्र था, व उषा उसकी पुत्री होती है यह कथा रात्रिके अन्धकार के बाद प्रभात का रूपक है। उषा के पीछे पड़ा हुवा अनिरुद्ध उदीयमान सूर्य अपनाने के प्रयत्न में बाण

रूपी अन्धकार को नष्ट कर उषा के साथ शादी करे इस में कुछ आश्चर्य नहीं। पौराणिक समय की उषा हरण आदि कथायें खास कर स्त्रियों के लिये प्रिय हो गई हैं। बाणासुर की पुत्री उषा वा ओखा बहुत सुन्दर थी, उसने स्वप्न में अनिरुद्ध का जिस दिनसे दर्शन किया उसी दिनसे वह मुग्ध हो गई थी, स्वप्नान्त में जब उसने अपने हृदयरमणको नहीं देखा तब उस की सखी चित्रलेखानें एक पट्ट पर अनेक देवताओं के चित्र खींच कर बताये, उ-ाने अपने प्रियतम को उस पट्ट के चित्रों में से पहिचान लिया, तब चित्रलेखा द्वारिका से कृष्ण के पौत्र प्रद्युम्न को उठा लाई, एवं शोणितपुर में ला कर उषा के पास उपस्थित किया, इस रूपक का यह अर्थ है कि द्वारिका अर्थात् पश्चिम दिशा में जाने वाला सूर्य उषा के पिता का नगर शोणितपुर= लाल प्रदेश वाले गगनपुर में चित्रलेखा अर्थात् नाना प्रकार के रंग बिरंगे ठाठ के साथ उषा के पास आता है, तब उषा मनुष्य की दृष्टि न पहुंच सके ऐसे अन्तःपुर में उस के साथ विहार करने लगता है, इस बात को जान कर बाण सेना सहित प्रद्युम्न के मारने को आता है। प्रद्युम्न रूपी सूर्यने अपनी किरणों द्वारा उसकी सेना का संहार कर डाला। अन्त में बाण को शंकर की शरण लेनी पड़ी, अनिरुद्ध व उषा अन्तमें लग्न ग्रन्थिसे संयुक्त हुवे, अर्थात् उषा सूर्य में समा गई, एवं सर्वत्र आनन्द हो गया।

२२ यम—यह सूर्य का पुत्र था उसकी बहिन जो उसकी प्रियतमा थी का नाम यमी था। वैदिक कल्पना के अनुसार

वह यम वरुण के साथ स्वर्ग में रहनेवाला तेजस्वी देव था। पीछे जब कश्यप प्रजापतिने राष्ट्र विभाग की कल्पना की तब वायु पुराण के अनुसार यम को पितृ लोक का अधिष्ठाता बनाया। पौराणिक दृष्टि से यम सूर्य की संज्ञा से उत्पन्न हुवा पुत्र था लेकिन उसकी विमाता पृथ्वी मय संज्ञा जो वस्तुतः छाया थी उसने उसे सापत्न भाव से दुःख देना शुरु किया, अन्त में यमने उस वेश धारण की हुई संज्ञा को लात मार कर उसका तिरस्कार भी किया था, क्रुद्ध संज्ञाने तेरा यह पैर गिर जावेगा शाप दिया था, शाप से दुःखित यमने यह बात अपने पिता सूर्य से कही तब उसने कहा तुझ सत्यवादी धर्मात्मा पर क्रोध करने का कोई भावी बड़ा कारण है। तब यमने धर्म से सूर्य को सन्तुष्ट किया, इस लिए धर्मराज के नाम से कहलाने लगा। वह पितरोंका अधिपति एवं लोकपालक भी बन गया। यह यम न्याय का देवता होने से धर्मराज एवं श्राद्ध का देव होने से पितृपति कहलाने लगे। यमपुरी इसकी नगरी का नाम है। देह छोड़नेके पश्चात् सब जीव अपने अच्छे बुरे कर्मों के फल भोगने के लिये वहां जाते हैं। शिव पुराण के कथनानुसार दयालु हृदय के जीव उत्तर दिशा में हो कर तथा पाप कर्म करने वाले जीव दक्षिण दिशा में हो कर यमपुरी को जाते हैं। वहां यम के दूत उनको यम के सामने खड़ा करते हैं। पुण्यात्माओं के तरफ मित्रता से व दुरात्माओं की तरफ कठोरता से वह देखता है। हिन्दु पुराणकारोंने इस प्रकार यम के सौम्य व उग्र स्वरूप

कल्पित किये हैं। अतएव उसकी दाढ़ी भयंकर व ओष्ठ हमेशा फड़कते रहते हैं, उस के अठारह हाथ काजल की राशि की न्याई दीख पड़ते हैं। वह बड़े भैंसे पर बैठता है। यम लाल फूलों की माला धारण करता है। समुद्र के समान गर्जना करने वाले उस के आसपास इंजन जैसे श्याम वर्ण के काल तथा मृत्यु खड़े हुवे दीख पड़ते हैं। उस के अधिकृत अन्धकारमय प्रदेश का नरक नाम है। उस के सात विभाग हैं, उस नरक पति के दो कुत्ते हैं एक कर्बुर त्रिशिर दूसरा श्याम है। इस के नौकर का नाम कर्मल है एवंच हिन्दुओं के पुराणों में वर्णन किया गया यम वैदिक काल का सूर्य ही है सूर्य जब अपनी सब वृत्तियों का (किरणोंको) निग्रह कर लेता है, अर्थात् सायंकालीन सूर्य जब किरण रहित दीख पड़ता है, तब वह संयमी गिना जा कर 'यम' कहलाता है। ठीक मध्यान्ह काल में किसी वस्तु की (प्रति छाया) परछांही नहीं पड़ सकती। इसी दृश्य को पुराणकारोंनें यमने छाया को लात मारी थी इस कथानक के रूपमें वर्णन कर, उसके पश्चात् के दृश्य को पैर रहित सूर्य के स्वरूप को यम को दिये हुवे शाप की बात के समर्थन में कहा हो ऐसा मालूम होता है। हिन्दु पुराणों के इस यमराज की ग्रीक तथा लेटिन प्रजाओं में हेड्ज़ व प्लूटो के नाम से वर्णन मिलता है। जिस प्रकार यम देव सृष्टि के माता पिता अदिति व कश्यप का पुत्र होने से अर्थात् वैदिक द्यौष (तेजस्वी देव) का भाई है, उसी प्रकार हेड्ज़ भी ग्रीक

पुराण कथा के अनुसार क्रोनस व हीया का पुत्र उसी प्रकार झ्युस (तेजस्वी देव ज्युपिटर) का भाई है। हिन्दु पुराणों के अनुसार समर्थ ब्रह्माने रात्रि व दिन की सन्धि में अर्थात् प्रदोष काल में पितरों को बनाया है, व उसका अधिपति यम रूपी अस्त होने वाले सूर्य की स्थापना की है, उसी प्रकार ग्रीकादि आर्य प्रजाने हेड्ज़ को श्राद्ध देव यम रूप बनाकर पितरों का अधिपति बनाया था। क्रोनस यह क्रतु और वही यज्ञ हो तो यज्ञ का पुत्र यदु नामक यामदेव उस को ग्रीस देशीय हेड्ज़ के साथ नाम दृष्टि से संकलन करने में कोई हानि नहीं हैं। एवंच ग्रीस देशीय हेड्ज़ को भारतीय यम की तरह देव समझ कर राष्ट्र विभाग की कल्पना जब हुई तब पाताल का दक्षिण दिशा का अंधकारमय प्रदेशों का राज्य स्वाधीन कर दिया गया। व उस को बलिदान भी दिया जाता था। यूरोप देशीय आर्यों में हिन्दुओं की न्याई श्राद्ध कर पितरों को तृप्ति करने की धर्म क्रिया का प्रचार था। ऐसा तद्देशीय पुराणकथाओं के वांचने से विदित होता है। हिन्दु कल्पना के अनुसार पितृ लोक के दो विभाग, अच्छे व बुरे मान कर बुरे केवल नरक में जिस प्रकार वैतरणी नदी मानी गई है व मृत मनुष्यों के लिंग-देहों को जिस प्रकार उसको उतरना पड़ता है उसी प्रकार ग्रीस देशकी कथा के अनुसार हेड्ज़ के प्रदेश में स्टीक्स नामकी नदी को केरान नामक मल्लाह जिस जिस मनुष्य की उत्तर क्रियायें यथार्थ होती हैं उन उन मनुष्यों के प्रेतों को नाव में बैठा कर

उतार देता है, यथार्थ उत्तर क्रिया न होने पर तो मनुष्य के प्रेत की अवगति होती है यह भावना ग्रीक आदि हिन्दुओं में एकही प्रकार की देखी जाती है। एवंच यह तत्व सर्व आर्य कुलों में एक जातीयता स्थापन करने के लिये पर्याप्त है। हिन्दु आर्यों में मरणाधीन मनुष्य के मुख में सुवर्ण आदि डालने का संप्रदाय है वैसा सम्प्रदाय ग्रीक आदि आर्यों में भी था, जिस के मुख में तरमाल रक्खा हुवा होता था उसको घोराकृति वाला वह केरोन शोकतरंगिणी से तरा कर पार उतार देता था। इस पर से ऐसा अनुमान करें कि हिन्दु आर्यों में मरे के मुंह में रखा जानेवाला सोना यह ग्रीक आर्यों द्वारा माना हुआ तरमाल है तो भी कुछ हानि नहीं। यमका कुत्ता कर्बुर जैसे तीन सिर का है, उसी प्रकार हेड्ज़ के प्रदेश की चौकी करने वाले सर्बेरस (शर्वरःअन्धकार) नाम के कुत्ते के भी तीन सिर माने गये हैं। सायंकालीन चित्र विचित्रता के साथ मिश्रित हुवे अन्धकार की यह कथा रूपक हो तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। अब इस विषय के साथ संकलित कितने ही यूरोपीय तथा हिन्दु आर्य संबन्धी तत्वों का परीक्षण कर यम की कथा को समाप्त करेंगे।

(अ) ग्रीकादि आर्यों में हिन्दु आर्यों की तरह मुर्दों को जलाने का रिवाज था, ऐसा ट्रोजन के विग्रह को वाचने पर यह स्पष्टतया विदित होता है। ग्रीक आर्य मरने के पश्चात् हिन्दुओं की न्याईं बारह दिन तक उत्तर क्रियायें करते इतनाही नहीं

किन्तु चिता को धोने का रिवाज भी दोनों आर्य कुलों में साधारण तत्वरूप से था। हिन्दू प्रथम दूधसे फिर जल से चिता को धोते हैं। व ग्रीक आर्य मदिरा से चिता की अग्नि को प्रशान्त करते थे। हड्डियों को चुन कर हिन्दू जिस प्रकार किसी पवित्र नदी में पधरा देते हैं, उसी प्रकार ग्रीक भी मृत की हड्डियों को एकत्र कर एक पात्र में रख उस को पृथ्वी में गाड़ देते हैं।

२३ वायु—वैदिक दृष्टि से वायुकी कथा पहिले ऊपर कह चुके हैं, अब पौराणिक दृष्टि से इस तेजस्वी देव के चरित तथा लक्षणों का वर्णन करेंगे। जिस प्रकार एक देव के अनेक नाम होते हैं, तो प्रत्येक नाम से उस की भिन्न भिन्न स्वतन्त्र कल्पना की गई है। वायु वायव्य दिशा का स्वामी है, एवंच आठ दिशाओं के आठ वायु मान कर उसके आठ स्वरूप माने जा सकते हैं। ब्रह्मारूपसे वायु का रूप लेकर आकाशमें फिरते फिरते जो पृथ्वी जल में डूबी हुई थी उसको ईश्वरने स्वयं वराह की आकृति धारण कर बाहर निकाला था। वायु की सहायतासे ही सूर्य अपने सब काम कर सकता है, उसको समर्थ सहकारी देव मानें तो किसी प्रकारकी हानि नहीं। विष्णु=सूर्य= के अवतार राम कृष्ण संबन्धी कथाओं में वायुके अवतार पुत्र रूप हनुमान तथा भीम नामक व्यक्ति का उक्त नायकों को उनके कार्य सिद्ध करवाने में सहायक हुवे थे। यह कथा भी उक्त वैदिक वायुकी पात्रता को स्पष्ट करने वाली है। पौराणिक

काल में जब कश्यपने राष्ट्र विभाग की कल्पना की थी तब वैदिक वायु को " शरीर रहित भूत शब्द आकाश व बल का अधिपति " भी बना दिया था। वायु दिति पुत्र है, तब दिति=खण्डित के अर्थ में वायुका भी यही अर्थ है तो कुछ आश्चर्य नहीं, इन्द्रने दितिके गर्भ के उनचास टुकड़े कर डाले थे, वे सब मरुत् के नामसे विख्यात हैं, पुराणोंमें मरुत के ४२ प्रकार बतलाये हैं, इन उनचास दिति पुत्रोंको सात सात के गण में विभक्त कर वायु के सात स्कंधों में विभाजित करा दिया है। कश्यप का पुत्र होने से वायु इन्द्र का छोटा भाई माना गया है, एवं देव पुत्र होने के सबब पूज्य भी माना गया है, वह ब्रह्मा का शिष्य है, एवं शिव पुराण के अनुसार उस के अधिकार में ४९ वायु हैं, वैदिक वायु जो कि जगत् का प्राण रूप था यद्यपि पौराणिक काल में अपने मूल गौरव को रक्षित किये हुवे है, तो भी जब पुराण काल में इन्द्र को देव सृष्टि मे देवाधिदेव बना दिया तब वैदिक वायु भी उसके साथ गौण पदको प्राप्त हुवा। वायु को इन्द्र अग्नि एवं सूर्य की न्याई जारकर्म करने वाला माना है। कुशनाभ राजा की सौ कन्याओं को देख कर वायु आतुर बन गया था, व उनके साथ एकान्त में मिलनेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु कन्याओंने उसकी याचना नहीं स्वीकारी तब हताश हो कर ब्रह्मा के पौत्र की पुत्रियों को वायु रोग कर दिया, फिर उस रोग को हटाकर कुब्जा नामक एक पुरी में उनको

बन्द कर दिया था, वैदिक वायु अर्थात् मरुत् की शक्ति ऐसी है कि उससे तमाम सृष्ट पदार्थ कांपते रहते हैं, वह मरुत बलवान् दृढ मूल, पराक्रमी आश्चर्यमय एवं अजेय है यह पात्रता पुराण कालमें भी रही है यह उसके अवताररूप हनुमान से सिद्ध होता है। पूर्व जन्मकी पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा जब शापित हो कर अंजना नाम से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई, तब वायु एक दिन उसको गिरिशृंग पर बैठी हुई देखकर मोहित हो गया तब व्यक्त रूप धारण कर विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। पहिले तो उसने ऐसा न करने को समझाया लेकिन अन्तमें उसकी याचना स्वीकृत कर उसके पेट से एक समर्थ पुत्र हनुमान का जन्म हुवा, एवं मरुत् का पुत्र मारुति के नाम से प्रसिद्ध हुवा, उसने राम रूपी सूर्य को सीता रूपिणी द्युति प्राप्त करने के लिये जो सहायता दी व उसके नाम के गुणों के अनुरूप ही था। फिर जब कृष्णावतार हुवा, तब इस वायु देवसे पाण्डु की स्त्री कुन्ति के पेटसे भीम रूप से अवतार ले कर अपने मूल गुणों को पांडव कौरव के युद्ध में प्रत्यक्ष करा दिया था। भीमने जो जो पराक्रम किये हैं उन सबका यदि पृथक् करण करेंगे तो पवन पृथ्वि पर जो जो कार्य कर सकता है उन सब कार्यों की रूपक ग्रन्थियां किस प्रकार रची गई हैं उसका अपने को सम्पूर्ण ख्याल आये बिना न रहेगा। अब हम यूरोपीय उप देवता वीन्डज् के (वायु) लक्षणों की परीक्षा करें, यह वीन्ड्ज् वायु चार दिशाओंमें चार प्रकार का

है. उत्तर के पवन का नाम बोरीआस वा एक्विलो है, पश्चिम के पवन का नाम झेफिरस (समीर) फेवोनियस है, दक्षिण के पवन का नाम नोटस वा ऑस्टर है, और पूर्व का 'युरस' कहते हैं। भारतीय कवियोंने समीर रूप से अनुभव में आते हुवे वायुको जिस प्रकार धीर व मृदु माना है, उसी प्रकार झेफीरसको ग्रीकादि आर्योंने सभ्यता की मूर्तिरूप गिना हो। भारतीय पुराणों में जो वायु प्रेमचर्या युक्त होकर धृष्ट बनता दीख पड़ता है उसकी प्रतिकृति रूप यूरोपीय पुराण कथाओंमें बोरीआस है। वायुदेव जिस प्रकार अपनी प्रेमतृषा को तृप्त नहीं कर सका, उसी प्रकार बोरीआस भी अपने आशय को फलीभूत न कर सका। अन्तमें वायुने जिस पुंजि-कुस्थला नामकी अप्सराकी अवतार रूप मान्य अंजना के आगे प्रत्यक्ष हो कर उससे हनुमान नामका पुत्र उत्पन्न किया था, उसी प्रकार बोरिआसके भी ओरिथियाको विहारार्थ लुभाने के सब प्रयत्न निष्फळ होने पर अपना सच्चा स्वरूप प्रकट कर उसके पेट से झेटीस तथा केले नामक बालक उत्पन्न किये थे। पश्चात् हनुमान् और भीम अनुक्रम से जिस प्रकार रावण और कौरवों के युद्ध में राम व पाण्डव के पक्षमें रह कर युद्ध में बहुत सहायक हो गए थे, उसी प्रकार बोरीआस के वीर बालकोंने भी आर्गोनॉट से जो चढाई कीथी उसमें अच्छी सहायता की थी।

(२४) अश्विनौ-वेदकालके अश्विनौ वा नासत्यौ को उत्तर कालीन पुराण कथाओंमें अश्वरूप को प्राप्त हुवे सूर्य के पुत्र कहा

गया है। अश्विनी नामक अप्सरासे उत्पन्न दोनों अश्विनी कुमार कहलाते हैं, इस प्रकार वे अश्वात्मज होकर अश्वविद्या में प्रवीण हों इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। इस तरह के इन वैदिक नासत्यौको महाभारत में माद्री के पेट से उत्पन्न पाण्डु राजा के पुत्र नकुल व सहदेव नामसे वर्णन किया है, इतनाही नहीं किन्तु वैदिक लक्षण भी उनमें घटित किये गये हैं। बन्धुद्वय नासत्यौ ने जिस प्रकार वेद कालीन कल्पना के अनुसार वृत्रके मारनेमें इन्द्रको सहायता दी थी, उसी प्रकार कौरवों को नष्ट करने में नकुल तथा सहदेव ने भी अपने भाई इन्द्रादि के पुत्र अर्जुन आदि पाण्डवों को सहायता दी थी, एवं ये अश्विनी कुमार वैद्यक विद्या के पिता थे, तथा उन्होंने च्यवन नामक ऋषि को फिरसे नवीन आंखे देकर यौवनः श्री की पुनः प्राप्ति कराई थी। ग्रीस देशीय केस्टर व पोलकस का युग्म इन अश्विनीकुमारों की प्रतिकृति रूप ही हैं। और यह ग्रीस देव अपने परोपकार करने वाले अश्विनीकुमार की न्याई अति प्राचीन देव सृष्टिमें झ्युस वा द्यौष (तेजस्वी) सूर्य के पुत्र थे, एवं हिन्दु आर्यों के देव वैद्योंकी तरह मनुष्य मात्र के सहायक, नौका विद्या में प्रवीण, अश्व विद्या के जानकार व सर्व चढाइयों में साथ ही रहने वाले थे।

२५ प्रकीर्ण—अब हमारी यूरोप तथा हिंदुस्थान के मुख्य मुख्य देवताओं से संबन्ध रखने वाली तुलनात्मक समीक्षा समाप्त होती है। तो भी इतनी बात तो हम यहां

अवश्य कह देंगे कि यह समीक्षा कोई सम्पूर्ण नहीं है। उपरोक्त देव देवियों के सिवाय दूसरी अनेक दिव्य व्यक्तियां हमारी तथा यूरोपीय पुराण कथाओं में इस प्रकार की हैं कि उन की तुलनात्मक समीक्षा करने से हमारा उद्देश अधिक सफल हो सकता है। उदाहरणार्थ ग्रीस देशीय फ्युरीझ वह अपनी चण्डि वा रौद्र शक्तियां हैं, ग्रीक सेन्टार वे अपने किन्नर; निम्फ्स वे अपनी अप्सरायें हैं। हिन्दु आर्यों के मन्तव्यानुसार ग्रीस की रौद्र शक्ति चौराहे स्मशान आदि में रहने वाली निशा आदि में भ्रमण करने वाली भी हैं। हमारे यम के राज्य में जिस प्रकार चित्रगुप्त मनुष्य मात्र के पुण्य पाप का निरीक्षक है, तथैव ग्रीस देशीय कथा के अनुसार मिनॉस प्लुटो के राज्य में न्यायासन पर बैठ कर प्रत्येक जीव के कर्मो की चौकसी करता है। भारतीय पुराणों में जिस प्रकार मरणाधीन हुवे मनुष्यों का कर्म दृष्टि से वर्ग कर दिये हैं, तथा उन के लिये यमालय में भिन्न भिन्न स्थान नियत किये हैं। उसी प्रकार ग्रीस देशीय आर्यों की कल्पनाने भी उनसे वैसा ही करवाया है। भूतकालीन बातों के भूल जाने का सिद्धान्त ग्रीस तथा हिन्दुस्थान के आर्यों में साधारण तत्त्वरूप हो गया है। तात्विक दृष्टि से तुलना करने पर ग्रीक तथा हिन्दु आर्यों की एकता सिद्ध की जा सकती है। पृथ्वी अप् तेज वायु और आकाश रूपी पंच महाभूत से सृष्टि मात्र सरजी जाती है। यह सिद्धान्त उभय आर्य कुलों से मान्य है एवंच इस प्रकार के

अनेक तत्व तथा पुराणकथाओं से उत्पन्न हुई लोक वार्ताओं की यथार्थ परीक्षा करेंगे तो अपना तथा ग्रीकादि आर्यों का सपिण्डत्व अवश्य सिद्ध होगा।

उपसंहारः—अब हम यह संक्षिप्त लेख समाप्त करेंगे, उक्त समालोचना अपने को यह बतलाती है कि आर्य प्रजा आदि काल में एक ही स्थान की रहने वाली, एक ही धर्मका अवलंबन करने वाली तथा एक ही प्रकार के देवी देवताओं को पूजने वाली थी। उत्तर कालीन स्थल भेद को ले कर भावना भेद हो गया, अन्तमें विचार वल्लरी विविध प्रकार से विकसित होती गई। लोक बुद्धि उत्तरोत्तर विकासको प्राप्त होने लगी, ज्ञान मर्यादा विस्तृत होती गई, नये नये अनुभव होने लगे, एक के बाद दूसरी विद्यायें जन्म पा कर समुन्नत होने लगीं, नवीन भू प्रदेश देखे जाने लगे इन सब बातों के परिणाम में आदि भावनाओं के स्वरूप विविध प्रकार से घटित होने लगे, एवं एक आर्य कुल में से अनेक आर्यकुल एक दूसरे से स्वतंत्र समाज रूपी स्थायी रूप पकड़ कर बैठ गये, लेकिन इन सब स्वतंत्र कुलों का व्यवहार-संबंध एकदम बन्द नहीं हुवा।

कलियुग आरंभ होने के बाद भी ये सब आर्य आपस में विचार विनिमय तो करते ही रहे, एक देश की विद्या दूसरे देश में जा सकती थी, परन्तु आखिर यह संबन्ध भी टूट गया, परिणाम में इतिहास भी यह कह रहा है कि उक्त एक मांबाप के बेटे

मानो एक दूसरे से बिलकुल अपरिचित हों ऐसी दशा की प्रभुता व्याप्त हो गई।

इस स्थलपर इतना और भी कह देना चाहिये कि हिन्दु-आर्यो की पुराण कथाओं को केवल कल्पना के कुसुम एवं अशास्त्रीय बतलाने का प्रयास यूरोपीय पंडितों की ओर से बहुत कुछ हुवा है। परंतु हिन्दुओं की पुराण कथाओं के गर्भ में स्थित रहस्य इतना गंभीर है कि जब तक उसका पृथक्करण यथार्थ रीतिसे न करने में आवे तब तक उन कथाओं का गौरव कोई भी समझ नहीं सकता। स्वयं हमारे अभ्यास तथा अनुभव के परिणाम से हम यह कह सकते हैं कि हिन्दु पुराणकारोंने पुराण कथा के विरचन करने में अद्भुत बुद्धि-बल का प्रयोग किया है, और ऐसी कथाओं का विस्तार करने में स्थान स्थान पर शास्त्रीयता का भी पालन किया है, व्यस्त पड़ी हुई आदि भावनाओं को उन को व्यवस्थित करने में हिन्दु आर्यों को जितना मान मिलना चाहिये उस से न्यून ही मान यूरोपीय आर्यों के हिस्से में आ सकता है। हिन्दु आर्योंने अखिल लोक समाज की व्यवस्था कर बहुज्ञानी, अल्पज्ञानी, एवं अज्ञानी, ऐसे दुनिया के तीन वर्ग बना कर तत्प्रकार की ज्ञान दीक्षा देने की व्यवस्था की है। बहुज्ञानी के लिये वेद उपनिषद् आदि सूक्ष्म ज्ञान से भरे हुवे शास्त्र ठहराये।

अल्पज्ञानी के लिये वेदान्त विषय में आलंकारिक भाषा मे पुराण रचे, एवं अज्ञानियों के निमित्त पुराण

कथाओं को केवल कथा वार्ता रूप धर्मशास्त्र के समान बना दिया, वस्तुतः लोक बुद्धि ग्राह्य भाषा में वर्णित वेदान्त गति भावना ही पुराण कथायें हैं, इस प्रकार हिन्दुओं के पुराण कथा की व्याख्या अगर हम करेंगे तो बहुतसा दोष न आवेगा, वेदोक्त एकेश्वर वाद को चतुर हिन्दु पण्डितों ने शास्त्रीय शैली से अनेकेश्वरवाद में किस प्रकार परिणत कर दिया इसकी प्रतीति पुराण कथाओं के गर्भ में छिपा हुवा रहस्य विवेचक बुद्धिसे देखने पर मालूम हो जाता है। ज्योतिःशास्त्र विषयक बातों को जो पुराणों में स्थान दिया गया है वह केवल बुद्धि पूर्वक ही है ऐसा हमें प्रतीत होता है। पाठक भी धैर्य से विचार कर देखेंगे तो उनको भी उसका गौरव ज्ञात हो जावेगा, तात्पर्य यह है कि हिन्दु आर्यों ने वेदान्तर्गत हिरण्यगर्भ की भावना को अनेक शब्द के परिवेश पहना कर पुराण कथाओं मे पिरो दिया है। सूर्य यही सगुण हिरण्यगर्भ वा ब्रह्म है। अर्थात् हिन्दु पुराण अर्थ हीन नहीं है, सुतराम् सामान्य लोक बुद्धि के लिये एक मात्र ज्ञान के आगार रूप हैं, इतना थोड़े में कह कर अब हम समाप्त करते हैं।
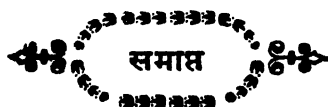
श्री सयाजी साहित्यमाला

हिन्दी पुस्तकें

(१) तुलनात्मक धर्म्म विचार अनुवादक राज्यरत्न आत्मारामजी एज्युकेशनल इन्स्पेटर बडोदा मू. १) अंग्रेजी तथा युरोप की भिन्न भिन्न भाषाओं में विविध देशों की भाषा, धर्म्म भावना, संसार घटना, पुराण कथा इत्यादि के अनेक ग्रन्थ तुलनात्मक परीक्षा करने वाले हैं परन्तु खेद है कि हमारी भाषाओं में ऐसी तुलनात्मक पुस्तकों का एक दम अभाव ही है अतः हमारा इस ओर प्रयत्न करना उक्त साहित्य का उषः काल का आरंभ हुआ कह सकते हैं एवं हिन्दी भाषा भाषी विद्वान् इस प्रयत्न को उदार अन्तः करण से स्वीकार करेंगे ऐसी आशा है। इस तुलनात्मक ढंग पर लिखी गई पुस्तक में यज्ञ, जादु, पितृपूजा, भावी जीवन, द्वंद्ववाद, बौद्ध धर्म्म, एकेश्वरवाद, पर विवेचन किया गया है तथा अनुवादक महोदयने अपनी भूमिका में विद्वत्ता पूर्ण विचार प्रगट किया है जिससे कि प्रत्येक मनुष्य को विदेशीय विचारों के साथ साथ अपने धर्म्म विचार क्या हैं यह सहज में मालूम हो जाता है। सजिल्द सुन्दर पुस्तक का मूल्य १). शीघ्र छपेंगी।

चीन की संस्कृति, नीति विवेचन, भाषा व्याकरण इत्यादि २

श्री सयाजी बाल ज्ञानमाला

श्री हर्ष अनुवादक श्री आनन्द प्रियजी बी. ए. एल एल बी. हिन्दी भाषा में यह पुस्तक बड़ौदा, इंदौर तथा मध्य प्रदेश और बरार के विद्याधिकारियों द्वारा पाठशालाओं में इनाम तथा पुस्तकालयों के लिये मंजूर किया गया है। इस में निम्नलिखित विषय हैं हर्ष के पूर्वज, पुष्प भूति, प्रभाकर वर्धन, मौखरिवंश, हर्ष का जन्मकाल, प्रभाकर की मृत्यु, ग्रहवर्म्मा. राज्य वर्धन की मृत्यु, हर्ष की दिग्विजय निमित्त कूच, राज्य श्री की खोज, हर्ष का राज्याभिषेक, उस के दया धर्म्म के कार्य तथा मृत्यु, हर्ष के समय के राजे राज्य आदि, साहित्याकार राजा हर्ष कवि के रूप में हर्ष के हस्ताक्षर शिलालेख इत्यादि मूल्य ॥) माडर्न रिव्यु की सम्मति

" **Sri Harsha** This is another publication of the above named series. The history of the Emperor Harshavardhana is presented in this nicely got up little book. The autograph signature of the emperor and the two appendices which give Madhuvana and the Bansakhera inscriptions have enhanced the charm & utility of the work. Thus the book will be found useful not only by a little advanced students but also the general public. "

कोष की कथा

सचित्र वैज्ञानिक पुस्तक Cell का पूर्ण परिचय देती है। जीव कोष क्या क्या कार्य्य शुरु से अन्ततक करता है यह इस पुस्तक में भली प्रकार दर्शाया है। आज तक हिन्दी भाषा में इस प्रकार की कोई भी पुस्तक नथी यह पहिली ही पुस्तक है। पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। मूल्य ॥) माडर्न रिव्युकी सम्मति इस प्रकार है।

Kosh ki katha The munificence and far sightedness of Maharaj Sayajirao Gaekwar of Baroda have instituted a very most useful and fascinating work in the shape of a series of juvenile booklets called the Sayaji Bal jnana Mala. The booklet under notice is the story of the cell told most plainly. The illustrations will add to the utility of the work, and the glossary of technical terms is most helpful. The get up gives credit to the publishers.

श्री सयाजी साहित्य माला

प्रकाशित पुस्तकें (गुजरातीमें)

१ विज्ञान गुच्छ

२ भू पृष्ट विचार ११ देह धर्म विद्याना तत्वो १२ विज्ञान प्रवेशिका १३ जिंदगीनो वीमो १७ उद् भिज्ज विद्यानु

रेखादर्शन १८ करोलियो २२ प्राणी विद्यानुं रेखादर्शन २५ मनुष्य विद्याना तत्वो ३५ जीव विद्या ३८ तुलनात्मक भाषा शास्त्र ४६ राजनीतिनो संक्षिप्त इतिहास ४७ समाज शास्त्र प्रवेशिका ४८ बाल उछेर ५०* बाल स्वभाव अने बाल पालन ५१ शरीर यंत्रनुं रेखादर्शन ७० रसायन प्रवेशिका ७६ वडोदरानुं अर्थ शास्त्र ८४ सनई वादन पाठमाला पु. ३८५ सनईवादन पाठमाला पु. ४ ८६ अवताररहस्य ।

२ चारित्र गुच्छ

८ प्रेमानंद १४ दयाराम २० मीरांबाई ३० गिरधर ३३ भालण ४१ महाराजा शिवाजी (मराठी) ४५ विष्णुदास ४९ वीर शिवाजी ५३ मणिशंकर कीकाणी ६२ दलपतराम ७२ समुद्रगुप्त ७७ चक्रवर्ती अशोक ।

३ इतिहास गुच्छ

१ संस्कृत वाङ्मयाचा इतिहास (मराठी) ९ जगत्‌नो वार्तारूप इतिहास भाग १ लो १९ ब्रिटिश राष्ट्रीय संस्थाओ २४ पेलेस्टाइनी संस्कृति २६ जगत्‌नो वार्तारूप इतिहास भाग ३१ पार्लामेंट ३४ इतिहासनुं प्रभात ४३ नवीन जापान नी उत्क्रांति ५५* चीननी संस्कृति ६५ हिंदुस्थानाचा अर्वाचीन इतिहास (मराठी)

४ वार्ता गुच्छ

३ आपणा लघुबन्धु अंग्रेज ४ अलकानो अद्‌भुत प्रवास १६ वीर पुरुषो

५ धर्म्मगुच्छ

(६) हिंदुस्ताननना देवो २३ दीघनिकाय (मराठी) तुलनात्मक धर्म विचार ३२ धर्मोना मुलतत्वो ४२ विविध धर्मोनुं रेखा दर्शन ४४ उत्तर युरोपनी पुराण कथा ८० तुलनात्मक धर्मविचार (हिंदी)

६ नीतिगुच्छ.

५ मा बापने बे बोल ७ नीतिशास्त्र २७* नीतिविवेचन २९ काबेटनो उपदेश ३७ नैतिक जीवन अने नैतिक उत्कर्ष.

७ शिक्षणगुच्छ.

१० बालोद्यान पद्धतिचें गृहशिक्षण २८ बालोद्यान* पद्धतिनुं गृहशिक्षण ५२ शाला अने शिक्षण पद्धति.

८ प्रकीर्णगुच्छ.

१५ सुधारणा व प्रगति (मराठी) २१ शिस्त (मराठी) ३९ हिन्दुस्तानाचा लष्करी इतिहास व दोस्त राष्ट्राच्या फौजा (मराठी) ५४ संस्कृति अने प्रगति.

श्री सयाजी बाळ ज्ञानमाळा.

प्रकाशित गुजराती पुस्तकें.

१ गिरनारनुं गौरव २ ऋतुना रंग ३ शरीरनो संचो ४ महाराणा प्रताप ५ कोषनी कथा ६ पाटण सिद्धपुरनो प्रवास ७ पावागढ ८* औरंगज़ेब ९ मधपुडो १० रणजीतसिंह ११* सुखी शरीर १२ श्रीहर्ष १३ सूर्यकिरण १४ वातावरण १५ ग्रहण १६ बाल नेपोलिअन १७ कोषकी कथा (हिन्दी सचित्र) १८ लोहीनी लीला १९ श्रीहर्ष (हिन्दी) २० सिकंदर नी स्वारी २१ सुरत २२ रशियानी ओलखाण २३ भूस्तरनी कथा।

---

* पुस्तकें शीघ्रही हिन्दी भाषा में भी छपेंगी। हिन्दी मालाओं के प्रकाशक

जयदेव ब्रदर्स

बड़ोदा